कल्पमेधा

सच बोलने का सबसे बड़ा फायदा यह है कि तुम्हें याद नहीं रखना पड़ता कि तुमने किससे, कहां, क्या कहा था।

– राबर्ट बेर्न्स

पर्दे में हकीकत

आम आदमी पार्टी की राज्यसभा सांसद और दिल्ली महिला आयोग की पूर्व अध्यक्ष स्वाति मालीवाल के साथ कथित दुर्व्यवहार और मारपीट का मामला अब भी रहस्य बना हुआ है। आरोप है कि मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल के निजी सचिव बिभव कुमार ने मुख्यमंत्री निवास के भीतर स्वाति मालीवाल के साथ मारपीट की। उन्हें दिल्ली पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया है। मगर अब तक पूरा मामला स्पष्ट नहीं हो पाया है। इसे राजनीतिक रंग दे दिए जाने की वजह से और उलझ गया है। आम आदमी पार्टी इसे भाजपा की साजिश बताने लगी है। खुद अरविंद केजरीवाल ने प्रेस वार्ता करके केंद्र सरकार पर आरोप लगाया कि वह उनके सारे नेताओं को गिरफ्तार करना चाहती है। बिभव कुमार की गिरफ्तारी के खिलाफ उन्होंने भाजपा दफ्तर पर प्रदर्शन का भी एलान कर दिया। भाजपा भी इस मामले को भुनाने में पीछे नहीं रही। उसके नेता इस मामले पर सार्वजनिक मंचों से बोलते रहे, महिला कार्यकर्ताओं ने प्रदर्शन किया। आम चुनाव का माहौल है, इसलिए भाजपा पूरी तरह इसका लाभ उठा लेना चाहती है। मगर आम आदमी पार्टी का पलटवार इस मामले के रहस्य को और गहरा कर देता है। दरअसल, इस घटना को लेकर खुद स्वाति मालीवाल के दुविधा भरे कदमों ने अनेक प्रश्न अनुत्तरित छोड़ दिए हैं।

घटना के तुरंत बाद मालीवाल ने फोन कर पुलिस को सूचना दी, प्राथमिकी दर्ज कराने थाने भी पहुंचीं, मगर प्राथमिकी दर्ज कराए बगैर लौट आईं। फिर तीन दिन तक वे चुप्पी साधे रहीं। घटना के दूसरे दिन आम आदमी पार्टी नेता संजय सिंह ने जरूर प्रेस वार्ता करके मालीवाल के साथ हुए दुर्व्यवहार को दुर्भाग्यपूर्ण बताया और उस पर मुख्यमंत्री की तरफ से कड़ी कार्रवाई का भरोसा दिलाया। मगर उनकी तरफ से ऐसा कोई कदम नहीं उठाया जा सका। चार दिन बाद मालीवाल ने प्राथमिकी दर्ज कराई और उनकी चिकित्सीय जांच की गई। जांच में उनके शरीर पर चोट के निशान चिह्नित किए गए। मगर उसके बाद मुख्यमंत्री निवास के भीतर सुरक्षा कर्मियों से मालीवाल की बातचीत और वहां से उनके बाहर निकलने की जो तस्वीरें जारी की गईं, उनमें कहीं भी उनके साथ दुर्व्यवहार की निशानदेही नहीं होती। दिल्ली पुलिस मामले की गहन जांच कर रही है, उसने कुछ तथ्य भी जुटाए हैं, उन्हीं के जरिए हकीकत सामने आ सकती है। मगर सवाल है कि आखिर मालीवाल क्यों कई दिन तक चुप्पी साधे रहीं और जो आम आदमी पार्टी महिलाओं की सुरक्षा के दावे करती नहीं थकती, वह मुख्यमंत्री निवास के भीतर हुई इस घटना पर से पर्दा उठाने से क्यों हिचकती रही।

किसी भी महिला के साथ अगर इस तरह दुर्व्यवहार किया जाता है, तो उसकी जितनी निंदा की जाए, कम है। चूंकि यह घटना एक राज्यसभा सदस्य के साथ हुई है और मुख्यमंत्री निवास के भीतर उनके निजी सचिव पर मारपीट का आरोप है, इसलिए यह और क्षोभ का विषय है। मगर जैसा कि दिल्ली सरकार और केंद्र सरकार के बीच खींचतान का वातावरण बना रहता है, इस मामले को भी राजनीतिक रस्साकशी का मुद्दा बना दिया गया है। यह किसी भी रूप में ठीक नहीं है। मालीवाल के साथ हुई घटना की हकीकत लोगों के सामने आनी ही चाहिए। अगर मुख्यमंत्री के निजी सचिव इस मामले में दोषी हैं, तो उन्हें बचाने का प्रयास क्यों होना चाहिए? अपेक्षा तो यह की जाती थी कि मुख्यमंत्री खुद इस मामले की जांच करा कर सच्चाई सामने लाएंगे।

हादसे के वाहन

सड़कों पर वाहनों के परस्पर टकराने से हुए हादसों में किसी न किसी की लापरवाही होती है। अगर किसी हादसे के पीछे वाहन में तकनीकी खराबी सामने आती है, तो आमतौर पर उसे लेकर प्रतिक्रिया का स्तर नरम हो जाता है। हालांकि तकनीकी खराबी की भी एक पृष्ठभूमि होती है। अगर समय-समय पर वाहनों की जांच न की जाए तो वह कभी भी बेहद घातक साबित हो सकती है। हरियाणा के नूंह में शुक्रवार की रात चलती बस में आग लगने की घटना अत्यंत त्रासद है। मानेसर-पलवल एक्सप्रेसवे पर श्रद्धालुओं से भरी एक पर्यटक बस में आग लग गई। विचित्र है कि आग लगने की भनक चालक को नहीं हुई, बल्कि स्थानीय लोगों की नजर पड़ी और उन्होंने किसी तरह उसे बताया। तब तक आग ज्यादा फैल चुकी थी। नतीजतन, नौ लोगों की जिंदा जल कर मौत हो गई और करीब पच्चीस लोग बुरी तरह झुलस गए। अब पुलिस घटना की जांच करेगी और अन्य औपचारिक कदम उठाए जाएंगे। मगर सवाल है कि जब कोई बड़ा हादसा हो जाता है और उसमें लोग मारे जाते हैं, उसके बाद ही संबंधित महकमों की नींद क्यों खुलती है।

पिछले कुछ वर्षों में लंबी दूरी की बसों की संख्या में बेतहाशा बढ़ोतरी हुई है। इन बसों की बनावट, प्रवेश और निकास या आपातकालीन दरवाजे की व्यवस्था इस तरह की होती है कि अगर किसी वजह से ये हादसे की शिकार हो जाएं, तो उनमें से समय पर न निकल पाने के चलते अनेक लोगों की जान चली जाए। जबकि वातानुकूलित वाहन तकनीकी खराबी के लिहाज से पहले ही संवेदनशील होते हैं। फिर, जहां थोड़े-थोड़े अंतराल पर बसों की तकनीकी जांच की जानी चाहिए, विश्राम देना चाहिए, वहीं ज्यादातर बसें कई-कई घंटे लगातार चलाई जाती हैं। ऐसे में तकनीकी खराबी की वजह से हादसों की आशंका बनी रहती है। सुरक्षित सफर के लिए अन्य जरूरी पहलुओं को सुनिश्चित किए बिना एक्सप्रेसवे जैसी तेज रफ्तार सड़कों पर दौड़ने वाली बसें दरअसल हादसे की आशंका अपने साथ लिए चलती हैं। सरकार और प्रशासन को यह सुनिश्चित करना होगा कि भाड़े की यात्री बसें यात्रियों की सुरक्षा को लेकर अधिक जवाबदेह और गंभीर हों।

तरक्की के बावजूद चुनौतियों के बीच

देश तरक्की कर रहा है, आधुनिक कारोबार में मजबूती आ रही है। हम एक निर्यात आधारित अर्थव्यवस्था बनाने का लक्ष्य पाल रहे हैं, लेकिन देश की घरेलू शुद्ध बचत में 2020-21 के बाद से लगातार गिरावट आ रही है।

सुरेश सेठ

पिछले दशक में देश ने बहुत तरक्की की है। अब यह विकासशील से विकसित देश होने की ओर अपने कदम बढ़ा रहा है। दो-तीन वर्ष में तीसरी आर्थिक शक्ति बनने जा रहा है। आर्थिक विशारदों के मुताबिक देश ने सात फीसद की जो आर्थिक विकास दर प्राप्त की है, वह अपने आप में प्रशंसनीय है, जबकि दुनिया के संपन्न देशों की आर्थिक विकास दर भी चार फीसद से अधिक नहीं। जहां पूरी दुनिया ने महामंदी का मुकाबला किया, वहां अपने देश ने विस्तृत बाजार और तत्पर मांग के कारण इस मंदी को छका दिया।

यह सही है कि फेडरल बैंक की दरों के बढ़ने के कारण भारत से विदेशी निवेश भगोड़ा हुआ, लेकिन चूंकि देश के घरेलू निवेशकों की आस्था भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रतिदान क्षमता में थी, इसलिए भारत की निवेश व्यवस्था के साथ वह हाराकिरी नहीं हुई, जो दूसरे कुछ देशों में देखने को मिली। सबसे उल्लेखनीय बात यह थी कि इसरो के अभियान नासा के मुकाबले बहुत किफायती रहे। यह गर्व का विषय था कि चांद के दक्षिणी ध्रुव पर भारत का चंद्रयान उतरा, जबकि रूस का अभियान पूरी तरह विफल रहा। अब भी इसरो की अंतरिक्ष यात्रा योजनाओं और सौर अन्वेषण अभियानों को व्यावसायिक तेवर देने की कोशिश हो रही है और उम्मीद कर रहे हैं कि जल्दी ही भारत इसके बल पर विनिमय दरों में अपनी मुद्रा के गिरते मूल्यों को संभाल सकेगा।

मगर इन सभी क्षितिज पर उभरते आर्थिक विकास के नए इंद्रधनुषों के बावजूद कुछ बातें हैं, जो काले बादलों की तरह इस नभ पर उभरी हैं। आज वे भले हमें तरक्की का संज्ञान दें, लेकिन कल को वही हमारे देश के लिए गले की फांस भी बन सकती हैं। देश तरक्की कर रहा है, आधुनिक कारोबार में मजबूती आ रही है। हम एक निर्यात आधारित अर्थव्यवस्था बनाने का लक्ष्य पाल रहे हैं, लेकिन देश की घरेलू शुद्ध बचत में 2020-21 के बाद से लगातार गिरावट आ रही है। पिछले तीन वर्षों में देश के परिवारों की शुद्ध बचत नौ लाख करोड़ रुपए से अधिक घट गई है। इस समय यह केवल 14.16 लाख करोड़ है। बेशक 2017-18 के बाद यह शुद्ध बचत का सबसे निचला स्तर है। तब शुद्ध बचत 13.05 लाख करोड़ रुपए थी। सिर्फ 2020-21 में एक बार लगा था कि शायद हम दस फीसद आर्थिक विकास दर पर पहुंच कर स्वतःस्फूर्त अर्थव्यवस्था को छू लेंगे, तब इन परिवारों की घरेलू बचत भी 23.29 लाख करोड़ रुपए हो गई थी।

यह बचत ही देश के पूंजी निर्माण का आधार होती है। यह घरेलू बचत ही देश के लघु और कुटीर उद्योगों के निवेश के लिए पूंजी का स्रोत होती है। यह घटी इसलिए, क्योंकि महंगाई बेलगाम रही। पिछले दो वर्षों से अपनी मौद्रिक नीति में रेपो रेट को उच्चतम स्तर पर बढ़ाकर, ब्याज दरों को ऊंचा करके, कर्ज को महंगा करके तरलता को घटाने का जो प्रयास किया गया था, उसे भारत ने स्वीकार नहीं किया। मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग की एक बड़ी कोटि पैदा हो गई,

जिसे देश की सत्ता के अनुसार उन 25 करोड़ लोगों ने बनाया था, जिसे वे गरीबी रेखा से बाहर ले आए थे। इस मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग की मांग में कमी नहीं आई और इसके अलावा वे अधिक ब्याज दरों के बावजूद कर्ज की दर को बढ़ाते रहे। इसके कारण जो मांग पैदा हुई, वह मूलभूत पदार्थों की नहीं, सुविधा वस्तुओं या दिखावे की वस्तुओं की है। इससे देश में उत्पादकों का रुख भी बदला। लोग छोटी कारों की जगह बड़ी कारों और छोटे फ्लैटों की जगह बड़े फ्लैटों की खरीद की ओर भाग रहे हैं।

> एक देश, जो निर्माण पथ पर बढ़ना चाहता हो, जो अर्थ-विशारदों के अनुसार कम से कम आठ फीसद विकास दर प्राप्त करना चाहता हो, वहां अगर घरेलू बचत और जीडीपी में बचत कम होगी और घरेलू खर्चे वर्ष भर में 54 फीसद बढ़ जाएंगे तो ऐसी असंतुलित अर्थव्यवस्था में विकास दर को स्थायित्व कैसे मिलेगा? स्थिति कुछ ऐसी नजर आ रही है कि देश तो विकसित हो जाएगा, लेकिन उसमें रहने वाली अधिकांश जनता गरीब और मूल वस्तुओं को तरसती रहेगी। उसे अनुकंपा की घोषणाओं पर जीना पड़ेगा। विकास की दर चंद धनकुबेरों के क्षेत्र में सिमट जाएगी।

यही नहीं, एक और नया सच सामने आया कि ग्रामीण इलाकों में खपत बढ़ने लगी। इसने शहरों की खपत को पीछे छोड़ दिया। अब मात्रात्मक वृद्धि 12.8 फीसद तक पहुंच गई और शहरी मांग उसके मुकाबले में घटकर 5.7 फीसद रह गई। नेल्सन आईक्यू की रपट के मुताबिक, यह वृद्धि गैर-खाद्य क्षेत्रों में हो रही है। खाद्य की तुलना में गैर-खाद्य क्षेत्रों में लगभग दोगुनी है। खाद्य क्षेत्रों में होती, तो देश फसलों का 'फिनिश्ड' उत्पादन बढ़ाने के लिए निवेश की ओर जाता, लेकिन यहां भी एक नया मध्यवर्ग पैदा हो गया था, जो सुविधाजनक वस्तुओं की मांग कर रहा था। एक साल में हमारी बचत 17 फीसद घट गई। जीडीपी में बचत का हिस्सा 50 वर्ष में सबसे कम हो गया।

एक देश, जो निर्माण पथ पर बढ़ना चाहता हो, जो अर्थ-विशारदों के अनुसार कम से कम आठ फीसद विकास दर प्राप्त करना चाहता हो, वहां अगर घरेलू बचत और जीडीपी में बचत कम होगी और घरेलू खर्चे वर्ष भर में 54 फीसद बढ़ जाएंगे तो ऐसी असंतुलित अर्थव्यवस्था में विकास दर को स्थायित्व कैसे मिलेगा? स्थिति कुछ ऐसी नजर आ रही है कि देश तो विकसित हो जाएगा, लेकिन उसमें रहने वाली अधिकांश जनता गरीब और मूल वस्तुओं को तरसती रहेगी। उसे अनुकंपा की घोषणाओं पर जीना पड़ेगा। विकास की दर चंद धनकुबेरों के क्षेत्र में सिमट जाएगी।

नए आंकड़े बता रहे हैं कि हमारे देश से रिकार्ड स्तर पर युवा शक्ति का पलायन विदेशों की ओर हो रहा है। चाहे हम तात्कालिक तौर पर संतुष्ट हो सकते हैं कि वहां से प्रवासी भारतीयों द्वारा जो पैसा भारत में आता है, जिसे 'रेमिटेंस' कहते हैं, वह काफी अधिक है। लेकिन यह रेमिटेंस भारत का मूल नहीं बन सकती। मूल भावना चाहिए थी उस युवा शक्ति को जो भारत में रहती, भारत के सकल घरेलू उत्पादन में अपने निवल प्रतिदान को बढ़ाती, लेकिन उसे तो विदेशी मंडियों में बिकने के लिए भेज दिया गया और यहां बाकी रह गया तेजी से बूढ़ा होता देश। फिलहाल विकास के आंकड़े उसे गर्वित कर सकते हैं, लेकिन अगर देश की युवा शक्ति, जो देश की कुल कार्यशील आबादी का आधा भाग है, वह देश के नवनिर्माण में ही नहीं जुटेगी और उसके लिए गांवों में लघु और कुटीर उद्योगों की स्थापना अपने पलक-पांवड़े नहीं बिछाएगी, तो उससे अधिक देश की तरक्की के क्षितिज पर काले बादलों का उमड़ना और नहीं हो सकता।

जरूरी है कि देश की युवा शक्ति देश में ही रहे। देश के नवनिर्माण में योगदान दे, लेकिन उसके लिए उसे चाहिए आकर्षक उत्पादन और रोजगार योजनाएं, जो गांवों और कस्बों से लघु और कुटीर उद्योगों के रूप में सहकारी आंदोलन के योगदान के साथ उभरे। लेकिन पिछले कुछ भ्रष्ट अनुभवों के कारण न तो सहकारी आंदोलन देश में पनप पा रहा है और न ही लघु और कुटीर उद्योग। इसी कारण एक तरक्की करता हुआ देश अधिक से अधिक बेरोजगारों का देश बनता जा रहा है जिसमें महंगाई ने उसके बखिए उधेड़ दिए हैं और भ्रष्टाचार उसके सिर का हर साया छीन रहा है।

विवेक के साथ विनम्रता

देवेश त्रिपाठी

कई लोग इस बात पर बहस छेड़ देते हैं कि डिग्री ज्यादा महत्त्वपूर्ण है या विवेक। जब बात शिक्षा और संस्कारों की होती है तो वहां विवेक काम आता है, पर डिग्रियों का अपना एक अलग महत्त्व है। आज जिस दौर में हम सभी जी रहे हैं, उस दौर में अगर एक व्यक्ति के पास औपचारिक शिक्षा की डिग्री नहीं हो, तो कोई उसे शिक्षित नहीं कह सकता है। लोगों का ऐसा भी मानना है कि डिग्रियों के होने से व्यक्ति बहुत समझदार भी होगा। यों यह भी माना जाता है कि डिग्रियों का होना व्यक्ति को विवेकवान, समझदार और जुझारू बनाता है। इसे हासिल कर लेने वाले लोगों के व्यवहार और बातचीत में परिपक्वता और शालीनता आ जाती है। शायद यही वजह है कि उनके रहन-सहन, बातचीत और वाकपटु शैली से बहुत सारे लोग सीखने की कोशिश करते हैं।

आज के दौर में जब चिकित्सा, इंजीनियरिंग और अफसर बनने की होड़ में लगातार बच्चे अपना स्वविवेक का इस्तेमाल करना भूल जा रहे हैं। उन्हें कहीं न कहीं समाज और घर-परिवार रिश्तेदारों के ताने भी सुनने पड़ते हैं। पहले की पढ़ाई अपने स्वयं के अस्तित्व के खोजने के लिए होती थी। अध्ययन से लेकर परीक्षा तक में विवेक को प्रधानता थी। अब जबकि पढ़ाई का आधार कहीं न कहीं अधिकतम नंबर लाना, श्रेणी और परीक्षा तक सीमित रह गया है, विद्यार्थी का समूचा ध्यान विवेक के बजाय ज्यादा से ज्यादा नंबर लाने पर होता है। पहले की पढ़ाई में लालटेन की रोशनी होती थी, बाती होती थी और आसपास प्रकाश के दायरे में फैले हुए नरकट की कलम, स्याही और सरकारी स्कूलों से पढ़ने के लिए मिली हुई किताब आदि होती थी। आज के समय में बहुत सारे लोगों और उसके बच्चों के पास तमाम सुविधाएं तो हैं, पर उसका मन पढ़ाई को लेकर उतना सजग, गंभीर और भाव प्रधान नहीं रह गया है। यही कारण है कि समूह डी और समूह सी की भर्तियों में भी परास्नातक से लेकर पीएचडी डिग्रीधारी आवेदन करते हैं। अधिकतम प्रतियोगिता होने, सीटों की संख्या सीमित होने के सापेक्ष सबको रोजगार हासिल नहीं हो पाता। ऐसे में व्यक्ति अपने प्राप्त की गई शिक्षा और डिग्रियों को कोसता है। असफल होने पर समाज भी उन्हें 'जस करनी तस भरनी' कहता है। शिक्षा व्यवस्था के तहत प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा के ढांचे में समय के अनुकूल जो परिवर्तन होने चाहिए, उस पर विचार करने या नहीं करने का काम गंभीरता के बिना नीति-निर्माताओं तक सीमित है।

सरकार और समाज के साथ-साथ हमारी व्यक्तिगत जिम्मेवारी है कि न्यूनतम या फिर अधिकतम शिक्षा ग्रहण करने वाला विद्यार्थी अपनी शिक्षा की प्रति इतना गंभीर हो कि अर्जित विद्या के सभी गुण पाए, मगर उसका विवेक उसके साथ हो। आजकल की स्कूली व्यवस्था को हिंदी-अंग्रेजी जैसे भाषाई गुण के आधार पर बांट दिया गया है। हिंदी और अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम हो सकते हैं। जो व्यक्ति अंग्रेजी शिक्षा को प्रधान और हिंदी शिक्षा को कमतर मानता है, उन्हें राही मासूम रजा के 'आधा गांव', श्रीलाल शुक्ल की 'राग दरबारी' और हरिवंश राय बच्चन के 'क्या भूलूं क्या याद करूं' जैसी किताबें पढ़ने से समझ में आ जाएगा कि भाषा एक माध्यम है अभिव्यक्ति का। जो अपनी बात अपनी भाषा में कहता है, वही कोई बात स्पष्टता के साथ कह पाएगा। अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा ग्रहण करना कोई गलत नहीं है, मगर इसे लेकर खुद पर गर्व करना या दूसरों को कमतर मानना गलत है। हर किसी के लिए अपने मूल तत्त्व को बचाए रखना आवश्यक है। शिक्षा हमें ज्ञान प्रदान करे, हमारे विवेक को समृद्ध करे, मगर अपनी जड़ों से अलग न करें। यह शिक्षा का मूल उद्देश्य होना चाहिए कि नवाचार से जोड़े रखते हुए भी वह हमारे व्यक्तित्व के आधार से जोड़े रखे।

मुश्किल यह है कि ऐसे मौके अक्सर सामने आते रहते हैं, जब हम ऐसे लोगों का सामना करते हैं जिनके पास औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के ढांचे की डिग्रियां तो ऊंची-ऊंची होती हैं, लेकिन ज्यादातर संवेदनशील अवसरों पर वे ऐसा बर्ताव करते हैं, जैसे उनके पास अपना विवेक हो ही नहीं। कहीं किसी समस्या के बारे में कोई हवाई बात पढ़-सुन कर वे उसी को आखिरी सच मान कर उस पर अमल करना शुरू कर देते हैं। अपनी सूझ-बूझ को ताक पर रख देते हैं। विवेक से वंचित ऐसी शिक्षा का क्या लाभ?

> शिक्षा का औपचारिक ढांचा तभी सार्थक है, जब वह हमें डिग्री के साथ-साथ ज्ञान और विवेक भी प्रदान करता है। यह हमें प्रज्ञावान होने में मदद करता है। प्रज्ञावान मनुष्य अपने मूल अस्तित्व को हमेशा पहचानता है। मूल अस्तित्व की पहचान होने से काम, क्रोध और अहंकार से बचाने में हमारी मदद करता है।

शिक्षा का औपचारिक ढांचा तभी सार्थक है, जब वह हमें डिग्री के साथ-साथ ज्ञान और विवेक भी प्रदान करता है। यह हमें प्रज्ञावान होने में मदद करता है। प्रज्ञावान मनुष्य अपने मूल अस्तित्व को हमेशा पहचानता है। मूल अस्तित्व की पहचान होने से काम, क्रोध और अहंकार से बचाने में हमारी मदद करता है। शिक्षा का उद्देश्य धनार्जन के साथ-साथ व्यक्तित्व के विकास में भी सहायक होना चाहिए। कोई भी व्यक्ति जो डिग्री और विवेक में फर्क करता है, उन्हें एक समय के बाद यह एक दूसरे से पर्याय नजर आने लगते हैं। जबकि समझदारी इन दोनों से अलग है और यह विवेक के साथ अभिन्न है। समझदारी आने से गंभीरता और एकाग्रता तथा आत्मचिंतन के साथ-साथ आत्म अनुशासन भी व्यक्ति में झलकने लगता है। विद्या हमें विनय सिखाती है और विनय हमें विद्या ग्रहण का पात्र बनाता है। जिस व्यक्ति के अंदर उच्च शिक्षा होते हुए भी विनम्रता का अभाव होता है, वह इस पृथ्वी पर भार के सामान होता है। विनम्रता को लेकर 'सुभाषितानि' में अनेक श्लोक कहे गए हैं, पर उन श्लोकों को पढ़ने-समझने और अर्थ ढूंढ़ने के बावजूद अपने अंदर परिवर्तन का अभाव हो तो उसमें तत्काल सुधार की जरूरत है।

दुनिया मेरे आगे

विविधता का सौंदर्य

किसी भी लोकसभा क्षेत्र में किसी उम्मीदवार के निर्विरोध चुने जाने के मुख्य रूप से दो कारण हो सकते हैं। पहला, या तो पूरे क्षेत्र के विकास संबंधित उनके कई महत्त्वपूर्ण कार्य हों, जनता के बीच लोकप्रिय हों। दूसरा, किसी में ऐसी हिम्मत ही न हो कि उसके खिलाफ चुनावी मैदान में उतर सके। सवाल है कि जब एक परिवार में अलग-अलग विचार वाले लोग भी होते हैं तो कितनी संभावना है कि एक संसदीय क्षेत्र में एक ही परोपकारी व्यक्ति हो? मतदाताओं को पूरे पांच वर्षों में एक बार अपने मताधिकार के प्रयोग का अवसर मिलता है। अगर वह अवसर भी न मिले तो फिर लोकतांत्रिक व्यवस्था का मतलब क्या है? लोकतंत्र में सत्ता पक्ष की जितनी उपयोगिता है, उतनी ही विपक्ष की भी उपयोगिता है। ऐसे में विपक्ष को खत्म करने की बात करना किस दृष्टिकोण से लोकतांत्रिक है? किसी भी लोकतंत्र का तानाशाही की ओर बढ़ना चिंताजनक ही है, गर्व करने की बात नहीं। हमारा देश विविधताओं से भरा है, लेकिन हम विविधताओं को प्यार करने वाली मानसिकता से दूर होते जा रहे हैं। एक ही कसौटी पर सभी को कसने का निरर्थक प्रयास कर रहे हैं, जबकि सबका अपना-अपना महत्त्व है।

– आनंद प्रवीण, पटना विवि

सांध्य वेला में

'बुजुर्गों की सेहत' (संपादकीय, 13 मई) पढ़ा। दिन पर दिन बुजुर्गों के समक्ष स्वास्थ्य समस्याएं बढ़ती जा रही हैं। आने वाले समय में भारत भी बुजुर्ग राष्ट्र की श्रेणी में आने वाला है, क्योंकि 2036 तक 23 फीसद और 2050 तक 35 फीसद भारतीय आबादी बुजुर्ग श्रेणी में आ जाएगी। हमें बुजुर्गों की इन समस्याओं की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। इसके लिए कुछ प्रयास किए जा सकते हैं। जैसे भारत में पश्चिमी देशों की तरह वृद्धाश्रमों का संचालन और उसके प्रति समाज के बीच सकारात्मक सोच को बढ़ावा देने की जरूरत है। वृद्धजनों की स्वतः सहायता समितियों को प्रोत्साहित कर इनके अनुभवों को समाज में उपयोगी बनाया जाना चाहिए, ताकि इनकी उत्पादक आयु में बढ़ोतरी हो सके। शैक्षणिक पाठ्यक्रमों और शिक्षा आदि माध्यमों से वृद्धजनों से संबंधित संवेदनशील मुद्दों को पढ़ाया जाए, ताकि समाज इनकी उपलब्धियों को समझे और पीढ़ी अंतराल के टकराव को कम किया जा सके।

– सावित्री शाह, सिंगरौली, मप्र

शोर की मार

औद्योगीकरण और शहरीकरण के रास्ते पर तेजी से बढ़ते शहरों में ध्वनि प्रदूषण की स्थिति दिनोंदिन भयावह होती जा रही है। सामान्य तौर पर हमारे कान एक निश्चित ध्वनि के स्तर को स्वीकार करते हैं, लेकिन नियमित तेज या निर्धारित से ज्यादा ऊंची आवाज को सहन नहीं कर पाते हैं। अगर लगातार ऐसा होता है तो किसी वक्त हमारे कान के पर्दे बेकार हो जाते हैं। जिसके परिणाम स्वरूप अस्थायी या स्थायी रूप से सुनने की क्षमता को गंभीर हानि पहुंचती है। इसके कारण बहरेपन, कान में दर्द, कमजोरी, अनिद्रा, तनाव, उच्च रक्तचाप, वार्तालाप की समस्या आदि का जन्म होता है। अत्यधिक शोर स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है और मानव, पशु- पक्षी और पेड़-पौधे सभी के जीवन के लिए असंतुलन का कारण है। ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रित करना हर नागरिक का कर्तव्य है। सरकार को भी ध्वनि प्रदूषण रोकने के लिए कुछ कठोर कानून बनाने चाहिए और आम जनता में इसके प्रति जागरूकता फैलानी चाहिए।

– हिमांशु शेखर, केसपा, गया

आस्था और जोखिम

पिछले दिनों उत्तराखंड राज्य के चार धाम यमुनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ और बद्रीनाथ के कपाट धार्मिक रीति-रिवाज और परंपराओं के साथ खोले जा चुके हैं। अब इस यात्रा में पांच किलोमीटर तक की लंबी लाइन देखी जा सकती है। इस बीच कई श्रद्धालुओं की मौत खबर चिंताजनक है। वहां सरकार ने अपील जारी की कि यात्री अभी यमुनोत्री, गंगोत्री न आएं। धार्मिक यात्राएं भावनात्मक और आस्था से जुड़ी होती हैं। तब भी हमें सरकार के दिशा-निर्देश का पालन करते हुए अपनी यात्रा करनी चाहिए। चार धाम की यात्रा पर आने वाले सभी श्रद्धालुओं को यह भी समझना होगा कि हमें उत्तराखंड को बचाए रखना है। इसलिए यात्रियों को थोड़ा धैर्य रखना चाहिए। अन्यथा बड़ी प्राकृतिक आपदा का सामना भी करना पड़ सकता है, जैसा एक बार केदारनाथ में हो चुका है।

– वीरेंद्र कुमार जाटव, दिल्ली

हमें लिखें, हमारा पता : edit.jansatta@expressindia.com | chaupal.jansatta@expressindia.com

नई दिल्ली

www.readwhere.com

भयानक गर्मी

स्वास्थ्य को खतरा

भारतीय मौसम विभाग-आईएमडी ने भयानक गर्मी की चेतावनी दी है जो स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा हो सकती है। मौसम वैज्ञानिकों ने उत्तर-पूर्वी भारत में अगले सप्ताह भयानक गर्मी और लू का पूर्वानुमान लगाया है। यह घोषणा लगातार लगातार तापमान बढ़ने के बीच आई है। इससे लोगों की बेहतरी व सुरक्षा के समक्ष व्यापक चुनौतियां पैदा होती हैं। तापमान के खतरनाक स्तर तक पहुंचने को देखते हुए भारतीय मौसम विभाग-आईएमडी ने नागरिकों, अधिकारियों तथा स्वास्थ्यसेवा प्रदाताओं को इसके प्रभावों से मुकाबला करने की सलाह दी है। भयानक गर्मी का अर्थ लंबे समय तक बहुत अधिक तापमान बने रहने के साथ अक्सर आर्दता का स्तर बहुत बढ़ना होता है। इससे गर्मी-संबंधी बीमारियों व मौत तक का खतरा पैदा हो सकता है। उत्तर पूर्वी भारत में राजस्थान, गुजरात, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश के कुछ भाग तथा मध्य प्रदेश राज्य शामिल हैं। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण इनको अत्यधिक गर्मी का खतरा खासतौर से होता है। लंबे समय तक बहुत अधिक तापमान के संपर्क में रहने के कारण लोगों को विभिन्न तकलीफें हो सकती हैं। इनमें थकावट, लू लगना, निर्जलीकरण तथा शरीर में ऐंठन शामिल हैं। मौसम की ऐसी अत्यधिक खराबी वाली स्थितियां पहले से ही संकटग्रस्त लोगों के लिए जोखिम और बढ़ा देती हैं जिनमें वृद्ध, बच्चे, गर्भवती महिलायें तथा स्वास्थ्य समस्याओं का सामना कर रहे लोग शामिल हैं। गर्मी-संबंधी बीमारियां तेजी से उभर कर फैल सकती हैं जिससे निपटने के लिए तत्काल चिकित्सा सहायता जरूरी होती है। पीड़ित लोगों में सुस्ती, मिचली, दिल की धड़कन तेज होना, भ्रम व बेहोशी जैसी स्थितियां पैदा हो सकती हैं जिनको गंभीरता से लिया जाना चाहिए। निश्चित रूप से कोई भी व्यक्ति प्रकृति से लड़ नहीं सकता है, पर उसे हमेशा इसके बुरे प्रभावों से अधिकाधिक सीमा तक बचाने का प्रयास किया जा सकता है। मौसम विभाग के पूर्वानुमान के विपरीत प्रभावों से बचाने के लिए नागरिकों में समग्र जन-जागरूकता अभियान चलाने की जरूरत है। इन अभियानों में नागरिकों को भयानक गर्मी और लू से पैदा होने वाले जोखिमों से निपटने और इससे बचने के निरोधक उपायों के बारे में जानकारी दी जा सकती है। फुटपाथों व मलिन बस्तियों में रहने वालों के स्वास्थ्य को अधिक खतरा होता है। संकटग्रस्त जनसंख्या को महत्वपूर्ण सहायता देने के लिए 'कूलिंग सेंटरों' की व्यवस्था होनी चाहिए जहां एयरकंडीशनिंग, पंखों व पानी की समुचित व्यवस्था हो। लोगों को समुचित मात्रा में पानी पीते रहने तथा भयानक गर्मी के समय ठंडे व छायादार स्थानों में ठहरने को प्रोत्साहित करना महत्वपूर्ण है। 'प्याऊ' की पुरानी व्यवस्था समाप्त होने के बाद अब पानी केवल बोतलों में ही उपलब्ध होता है। सरकार को 'वाटर कियोस्क' की व्यवस्था करनी चाहिए जहां लोगों को आवागमन के समय मुफ्त स्वच्छ पेयजल मिल सके। इसके साथ ही शहरी नियोजन रणनीतियों में हरित स्थल बनाने, पेड़ लगाने तथा ऐसी प्रत्यावर्तन सतहें बनाने पर ध्यान देना शमिल किया जाना चाहिए जो शहरी 'हीट आईलैंड प्रभाव' को न्यूनतम कर आरामदेह तापमान सुनिश्चित कर सकें। गर्मियों में पानी की कमी और बिजली की कटौती से स्थितियां और बिगड़ सकती हैं। ऐसे में अधिकारियों को बिजली कटौती न्यूनतम रखने तथा स्वच्छ पेयजल की उपलब्धता सुनिश्चित करने पर ध्यान देना चाहिए। उत्तर-पूर्वी भारत में भयानक गर्मी को देखते हुए सार्वजनिक स्वास्थ्य और सुरक्षा को प्राथमिकता देना जरूरी है। मौसम विभाग का पूर्वानुमान सतर्क व सही सूचनाओं से लैस रहने तथा जोखिम घटाने के प्रयास करने की चेतावनी है।

श्रीलंका में युद्ध के भयावह परिणाम

अवर्णनीय भयावहता तथा लगातार जारी हिंसा की भयानक यादें अभी जनमानस में जीवित हैं। इससे युद्धों की भयावह मानवीय विभीषिका पर गंभीर समझदारी की आवश्यकता उजागर होती है।

नीलांत इलांगमुवा
(लेखक, वरिष्ठ पत्रकार हैं)

पंद्रह साल पहले आज जैसे किसी दिन अंतिम गोली चली थी जिससे श्रीलंका में 30 साल लंबे युद्ध का अंत हुआ था। अब उस समय की भयानक यादें स्मृतियों का हिस्सा बन गई हैं, लेकिन उसकी यादें अभी भी लोगों को झकझोर देती हैं। मेरा उद्देश्य यहां राजनीतिक विश्लेषण करने के बजाय अवर्णनीय मानवीय त्रासदी पर गौर करना है जिसका सामना इस देश के लोगों को करना पड़ा था। यह कष्ट केवल उन लोगों तक सीमित नहीं था जहां भयानक युद्ध छिड़ा था, न ही इसका संबंध किसी खास समुदाय से था जिसे उत्पीड़न के लिए चुना गया था। अनेक प्रकार से उस समय पूरा देश अनेक प्रकार के दुश्मनों से लड़ रहा था। एक मासूम बच्चे के रूप में मेरे मन में उन दिनों की भयानक त्रासदियां जमी हुई हैं। उस समय मेरी आयु केवल 6 साल थी।

गांव में दूसरे लोगों की तरह मैं अपनी मां का हाथ पकड़े उस समय जल्दी से एक स्थान पर पहुंचा था। हम सबने अधजली लाशों को देखा था। मौतों की भयावह छाया हमारे ऊपर हावी थी और हम उसकी पकड़ से किसी तरह बचने का प्रयास कर रहे थे। जहां हमारे समुदाय के लोग रहते थे वहां सड़क के किनारे एक लाश पड़ी थी। कुछ लोग आग से आधे जल चुके थे और उनकी चीखें वातावरण में गूंज रही थीं। ऐसा लगता था कि कुछ क्रूर लोगों ने हमारा भविष्य अंधकारमय कर दिया था। आज भी हमलावरों की पहचान रहस्य बनी हुई है, लेकिन उनकी क्रूरता असीम थी। हिंसा के उस दौर में उनको पीड़ितों के परिवारों की जरा भी चिन्ता नहीं थी। वे लोगों की बेलगाम तरीके से हत्यायें कर रहे थे। वह दुर्भाग्यपूर्ण दिन मुझे आज भी अराजकता और निराशा से ध्वस्त हुई अपनी दुनिया की याद दिलाता है। किसी मरे हुए आदमी की खोपड़ी पीड़ा की प्रतीक की तरह पड़ी थी। कभी यह आदमी भी मुस्कराता होगा, पर अब उसके दांत निर्जीव चेहरे से बाहर झांक रहे थे। किसी जलते हुए टायर के प्रकाश में लाशें ही लाशें दिख रही थीं। ये उन उत्पीड़कों की हिंसा और क्रूरता की निशानी थीं जिन्होंने हमारे समुदाय पर पूरी बर्बरता और नृशंसता से हमला किया था।

लेकिन यह श्रीलंका में जन विमुक्ति पेरामुना-जेवीपी के दूसरे विद्रोह से पैदा अराजकता का केवल एक प्रकरण था। उस समय की भयावहता अब भी मेरे दिमाग में जीवित है। यह इस बात का प्रतीक है कि कैसे एक पीढ़ी हिंसा और निराशा से भरी दुनिया में पली-बढ़ी थी। इस पीढ़ी के माता-पिता के लिए जीवित बचे रहना ही एकमात्र लक्ष्य था और हर दिन वे मौत के शिकंजे में फंसने से बचने के लिए संघर्ष करते थे।

ऐसे में राज्य के साथ खड़े होने पर क्रांतिकारियों के गुस्से का शिकार बनना था जो अचानक कहीं से प्रकट होते और अपनी समझ से 'न्याय' कर गायब हो जाते थे। इसके उलट, क्रांतिकारियों से जुड़ने का अर्थ राज्य मशीनरी से तत्काल क्रूर प्रतिक्रिया का शिकार बनना था जो विरोधियों की तलाश करने और उनसे क्रूरतापूर्वक निपटने में कोई कसर नहीं छोड़ती थी। यह उस युग का कटु यथार्थ था जिसकी कोई सीमा नहीं थी और जिसमें दया का कोई स्थान नहीं था। देश के सिंहली-प्रभुत्व वाले क्षेत्रों में विद्रोह की ज्वालायें बेलगाम होकर भड़क रही थीं, जबकि तमिलों और मुसलमानों के प्रभुत्व वाले उत्तरी व पूर्वी क्षेत्रों में भी आतंक पसरा था। यह उन सभी लोगों के लिए भय का कारण था जो यथास्थिति को चुनौती देने की हिम्मत करते थे। इस प्रकार विभाजित स्थितियों वाले देश में नस्ली और वैचारिक सीमायें धुंधली हो गई थीं तथा लगातार हिंसा व निरपराध लोगों की पीड़ा की कोई सीमा नहीं थी। हाईस्कूल में पढ़ाई के दौरान मैंने देश में तमिल सशस्त्र समूहों व खासकर लिबरेशन टाइगर्स आफ तमिल ईलम-लिट्टे की भयावह छाया फैलती देखी। भूटान के थिम्पू में शांति वार्ताओं के बाद लिट्टे ने अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए क्रूर अभियान चलाया। उसने उन सभी तमिल समूहों का सफाया कर दिया जो उसके अधिकार को चुनौती देते थे। श्रीमती इंदिरा गांधी के नेतृत्व में केन्द्र सरकार तथा तमिलनाडु की राज्य सरकार द्वारा पहले समर्थित समूहों को भी इस अत्याचार से मुक्ति नहीं मिली। लिट्टे स्वयं को तमिल हितों के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में स्थापित करना चाहता था।

इस खूनी संघर्ष के साथ ही लिट्टे ने आतंक की एक लहर पैदा की जिसका उद्देश्य उत्तरी प्रायद्वीप से सिंहलियों व मुसलमानों को जबरन बाहर निकालना था। उसे अपने घर व आजीविका छोड़ कर भागने वालों की जरा भी चिन्ता नहीं थी। अनेक मुस्लिम इस भयानक हिंसा से बचने के लिए हर संभव परिवहन साधन से भाग कर सरकार-नियंत्रित क्षेत्रों में पहुंचने लगे। उनको उम्मीद थी कि वहां वे अराजकता से मुक्त होकर अपने घर बना सकेंगे। इन विस्थापित लोगों में दृढ़ता व विजय की अनेक कहानियां सामने आईं क्योंकि उनमें से अनेक अपना जीवन व्यवस्थित करने में सफल हुए। उनमें से कुछ अंतत: प्रमुख बिजनेसमैन व प्रभावशाली राजनेता बनने में सफल हुए। लेकिन उनकी इन विजय गाथाओं में विस्थापन और नुकसान की त्रासदियां छिपी थीं। इस सफलता के लिए उनको टकराव और उथलपुथल के कारण भयानक मानवीय कष्ट उठाने पड़े थे। लिट्टे द्वारा फैलाया आतंक बहुत सटीक ढंग से काम करता था अपनी फासिस्ट विचारधारा का विरोध करने वाले किसी व्यक्ति को छोड़ता नहीं था।

इसकी शुरुआत प्रतिद्वंद्वी सशस्त्र समूहों के सफाए से हुई। इसके बाद उसकी हिंसा का शिकार न केवल दूसरे नस्ली समुदाय, बल्कि तमिल बुद्धिजीवी भी थे जो दूसरे राजनीतिक समीकरणों की वकालत करते हुए आत्मनिर्णय के अधिकार की पैरवी करते थे। जाफना में रजनी थिरांगमा की हत्या हुई जो सम्मानित बुद्धिजीवी तथा तमिल अधिकारों की पैरोकार थीं। यह लिट्टे द्वारा अपने विरोधी स्वर कुचलने का एक उदाहरण था। सुश्री रजनी के पिता ए. राजासिंघम ने कुछ साल बाद कोलम्बो में मुझसे बात करते हुए अपनी बेटी की असमय हत्या का हृदयविदारक वर्णन किया था। उनके वर्णन से स्पष्ट होता है कि लिट्टे तमिल लोगों पर अपनी इच्छा थोपने के लिए हिंसा और दबाव की किस सीमा तक जा सकता था। तमिल बुद्धिजीवियों की संख्या कम करने के बाद लिट्टे ने अपना नया लक्ष्य तय किया। वह बच्चों की अपनी कतारों में भर्ती करने लगा। हजारों मासूम किशोरों को जबरन उनके परिवारों से छीन लिया गया, उनको अथक रूप से 'वैचारिक घुट्टी' पिलाई गई और इसके बाद युद्धक्षेत्र में झोंक दिया गया। इन मासूम बच्चों और किशोरों को इतने भारी हथियार लादने और ढोने के लिए मजबूर किया गया जो उनकी आयु तथा भार वहन सीमा से बहुत अधिक थे।

लिट्टे ने इनमें से कुछ बच्चों और किशोरों को आत्मघाती हमलावरों में बदल दिया। इन आत्मघाती आतंकियों के माध्यम से राजनेताओं तथा निहत्थे नागरिकों को समान रूप से निशाना बनाया गया ताकि लिट्टे का वर्चस्व स्थापित हो सके। युद्ध संवाददाता के रूप में मैंने इन 'बाल सैनिकों' की पीड़ा निकट से देखी है जिनमें से कुछ अपने हथियारों को ठीक से उठा तक नहीं पाते थे। उनमें से अनेक कुपोषित थे और उनके हड्डियों के ढांचे उनकी मजबूरी बताते थे। ये बच्चे भी अन्य बच्चों की तरह स्कूल जाने के सपने देखते थे, लेकिन वे कभी पूरे नहीं हुए। लिट्टे द्वारा ढाए अत्याचारों की कोई सीमा नहीं थी। उन्होंने अनेक निरपराध लोगों पर अत्याचार ढाने के साथ ही उन लोगों की जेबें भी भरीं जो इस अराजकता में मुनाफा कमा रहे थे।

सुदूर पश्चिमी देशों में भी रहने वाले तमिल लिट्टे के आतंक, वसूली और उत्पीड़न का शिकार हुए। उनको हिंसा या श्रीलंका में रहने वाले अपने प्रिय जनों की हत्या की धमकी पर लिट्टे को पैसा देने के लिए मजबूर किया गया। लेकिन 'ह्यूमन राइट्स वाच' जैसे संगठनों की रिपोर्टों के बावजूद तथाकथित 'स्वतंत्रता संघर्ष' के नाम पर किए गए उसके अत्याचारों पर पर्दा डाला गया तथा उसे महिमामंडित किया गया। अंतत: मई, 2009 में तीन दशक लंबे इस युद्ध का अंत हुआ। इस 'विजय' का उत्सव मनाने के बजाय एक राष्ट्रीय चेतना का विकास किया जाना चाहिए जहां शांति सबका साझा लक्ष्य बने तथा आने वाली पीढ़ियों को सुरक्षा प्रदान की जा सके।

भारत में परमार्थ का बदलता स्वरूप

परोपकारी आंदोलन में एक बड़ी छलांग के लिए मंच तैयार है, जो 'अधिक, शीघ्र और बेहतर दान' के युग की शुरुआत करेगा।

अमिताभ जयपुरिया
(लेखक, स्तम्भकार हैं)

भारत हमेशा से परोपकार की अवधारणा वाला देश रहा है। इस लोकाचार ने कई परोपकारी लोगों को जन्म दिया है, जिन्होंने बहुत योगदान दिया है और आधुनिक भारत की कई महान संस्थाओं के निर्माण और समर्थन में मदद की है। टाटा इस तरह के आधुनिक भारतीय परोपकार का सबसे बड़ा उदाहरण है। आज, भारत में परोपकार, दान की मात्रा और गुणवत्ता दोनों के संदर्भ में एक परिवर्तनकारी मोड़ पर है। नाइट फ्रैंक की 2023 की संपत्ति रिपोर्ट के अनुसार, भारत में अल्ट्रा-हाई नेट वर्थ इंडिविजुअल्स की संख्या अगले पांच वर्षों में 58 प्रतिशत से अधिक बढ़ जाएगी। भारत ने पिछले दशक में कई यूनिकॉर्न का उदय देखा है और अगले कुछ वर्षों में 9150+ यूनिकॉर्न का उदय देखने को मिलेगा, जो कि संपत्ति में भारी उछाल का संके त है। यह सौभाग्य की बात है क्योंकि परोपकारियों पर अधिक परोपकार की मांग बढ़ती ही जाएगी, जिसकी हमें उम्मीद है कि परोपकारी दान में भी वृद्धि होगी।

यूएचएनआई भारत में दान के परिदृश्य को फिर से परिभाषित कर रहे हैं- वे अब दान की प्रक्रिया में अधिक सक्रिय रूप से शामिल हैं, यह सुनिश्चित करने के लिए समय समर्पित कर रहे हैं कि उनकी संपत्ति पर्याप्त प्रणालीगत सुधारों को आगे बढ़ाए। अमित और अर्चना चंद्रा, आशीष धवन, अजीत इसाक, हर्ष मारीवाला, क्रिस गोपालकृष्णन, रोमेश और सुनील वाधवानी, देश देशपांडे और विक्रांत भार्गव नए युग के परोपकारियों के कुछ बेहतरीन उदाहरण हैं, जो संस्था निर्माण और प्रणालीगत परिवर्तन परियोजनाओं सहित परोपकारी पहलों का एक पोर्टफोलियो विकसित कर रहे हैं। यह प्रवृत्ति के वल तेज होने वाली है।

उभरने वाली एक और प्रमुख प्रवृत्ति परोपकारियों की औसत आयु में क्रमिक कमी है। ये युवा और नए दानकर्ता, जो वर्तमान पारिवारिक लाभार्थियों और पहली पीढ़ी के धन सृजनकर्ताओं दोनों का प्रतिनिधित्व करते हैं, दान देने के लिए अभिनव और विघटनकारी दृष्टिकोणों के साथ पारंपरिक बाधाओं को तोड़ रहे हैं और स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा और आजीविका के ऐतिहासिक रूप से पसंदीदा क्षेत्रों से परे मुद्दों को संबोधित करने के लिए आगे बढ़ रहे हैं। युवा, प्रतिबद्ध और तकनीक-प्रेमी पेशेवरों द्वारा संचालित जमीनी स्तर के संगठनों की अगली पीढ़ी के साथ मिलकर नेक्स्टजेन परोपकारियों की उभरती हुई जमात आने वाले वर्षों में दान के परिदृश्य को बदलने के लिए तैयार है।

प्रौद्योगिकी उद्यमियों का अनुपात भी बढ़ रहा है और इन परोपकारियों ने अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक उदारता से दान दिया है। जबकि वे इस क्षेत्र में कुल संपत्ति का लगभग 8 प्रतिशत हिस्सा हैं, उनका परोपकारी योगदान सभी दान का लगभग 35 प्रतिशत है-अजीम प्रेमजी, इन्फोसिस के संस्थापक, रोहिणी नीलेकणी, शिव नादर, कामथ बंधु, सुब्रतो बागची और संजीव बिखचंदानी टेक क्षेत्र के नए युग के परोपकारियों के बेहतरीन उदाहरण हैं। परिवार के दानदाताओं की युवा पीढ़ी में विशेषाधिकार के प्रति संवेदनशीलता भी बढ़ रही है और वे तेजी से उस विशेषाधिकार का उपयोग कर रहे हैं। उनमें से कुछ परोपकार के लिए समर्पित पेशेवर रास्ते भी बना रहे हैं। हालाँकि, भारत में यूएचएनआई दान में कई सकारात्मक रुझानों के बावजूद, चुनौतियाँ बनी हुई हैं। सबसे पहले, भारत के यूएचएनआई को अपने दान के सापेक्ष अनुपात को बढ़ाने की तत्काल आवश्यकता है। दान की वर्तमान दर धन संचय की गति से मेल नहीं खाती। बैन एंड कंपनी की 2023 इंडिया फिलैंथ्रोपी रिपोर्ट बताती है कि विप्रो के संस्थापक अजीम प्रेमजी के योगदान को छोड़कर, यूएचएनआई दान में वित्तीय वर्ष 2022 में 5 प्रतिशत की गिरावट आई, जबकि उनकी संपत्ति में 9 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई। साथ ही, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूके और चीन में अपने साथियों की तुलना में, भारतीय यूएचएनआई अपनी संपत्ति के सापेक्ष काफी कम योगदान देते हैं, कुछ मामलों में, दान 10 गुना तक कम है। दूसरा, परोपकारी कारण अधिक विविध और विविध होते जा रहे हैं, क्योंकि कुछ कारण अधिक जरूरी हो गए हैं जैसे जलवायु परिवर्तन और मानवीय संकट जबकि पारंपरिक कारण-शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, गरीबी उन्मूलन और आजीविका-एजेंडे में सबसे ऊपर बने हुए हैं। भारत में खेल, कला और संस्कृति और मानसिक स्वास्थ्य जैसे कई अन्य नए और अक्सर उपेक्षित कारणों को संबोधित करने के लिए परोपकारी पूंजी का भी तेजी से उपयोग किया जा रहा है। इसलिए, कारणों के लिए उचित परोपकारी पूंजी को प्राथमिकता देना और आवंटित करना महत्वपूर्ण हो जाता है।

तीसरा, यूएचएनआई को अधिक समय और प्रयास देकर परोपकार में खुद को अधिक शामिल करने की आवश्यकता है। उन्हें अपने संसाधनों-धन, समय और प्रयास को एकत्रित करने के लिए अन्य परोपकारी लोगों के साथ अधिक सहयोग करने की भी आवश्यकता है और अधिक महत्वाकांक्षी परियोजनाओं को आगे बढ़ाने, बेहतर संस्थान बनाने और बदलाव लाने के लिए नए मॉडलों के साथ प्रयोग करने की आवश्यकता है। उन्हें यह देखने के लिए भी प्रयोग करने की आवश्यकता है कि लगभग सभी क्षेत्रों, विशेष रूप से शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, कौशल और जलवायु परिवर्तन में सेवाओं और सेवा वितरण को बदलने और बढ़ाने के लिए प्रौद्योगिकी का लाभ कैसे उठाया जा सकता है। इस परिवर्तन में दानकर्ता और दान प्राप्त करने वाले के बीच एक नए समझौते से भी सहायता मिलेगी जो अधिक पारस्परिक सम्मान पर आधारित है और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में सभी हितधारकों की अधिक भागीदारी को देखता है कि संसाधनों को कहां, कैसे और कब लगाया जाए और प्रभाव को कैसे मापा जाए। हम उम्मीद कर सकते हैं कि 2024 भारत में परोपकारी आंदोलन के लिए एक मील का पत्थर साबित होगा, जिसमें पहले से कहीं अधिक, जल्दी और बेहतर दान दिया जाएगा। व्यक्तिगत परोपकार भारत में कई चुनौतियों को हल करने में एक अद्वितीय उत्प्रेरक की भूमिका निभा सकता है, समय अभी है।

आप की बात

संपत्ति का अधिकार

सुप्रीम कोर्ट ने भूमि अधिग्रहण को लेकर एक अहम फैसला दिया है। अदालत ने कहा कि अगर किसी व्यक्ति को संपत्ति के अधिकार से वंचित करने से पहले उचित प्रक्रिया स्थापित नहीं की गई या उसका पालन नहीं किया गया तो निजी संपत्तियों का अनिवार्य अधिग्रहण असंवैधानिक होगा। सुप्रीम कोर्ट का यह निर्णय निश्चित रूप से स्वागत योग्य है। वर्तमान समय में जमीनों को कीमतों में भारी वृद्धि हुई है। जहां से भी सड़कें व हाईवे निकलते हैं वहां आसपास की जमीन के दाम कई गुना बढ़ जाते हैं। सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले के बाद अब सरकार को अधिग्रहीत की जाने वाली जमीन का मुआवजा बाजार मूल्य से देना चाहिए अथवा संबंधित पक्ष को संतुष्ट कर दूसरी जगह वाणिज्यिक प्रयोग वाली जमीन देनी चाहिए। अनेक मामलों में लोग सरकार द्वारा दिए मुआवजे से अधिक की मांग करते हैं और संगठित रूप से अपनी जमीन नहीं देने के लिए आंदोलन करने लगते हैं। देश के लिए सड़क व अन्य ढांचागत संरचना निर्माण बहुत आवश्यक है। अत: सार्वजनिक उद्देश्य से भूमि अधिग्रहण पर सरकार को समय-समय पर निर्देश जारी करते रहना चाहिए। इसमें निजी क्षेत्र के बिल्डरों को भी सहभागी बनाने से नगर नियोजन में सुविधा मिलेगी तथा लोग ठगी से बच सकेंगे।

-सुभाष बुडावन वाला, रतलाम

मालीवाल से बदसलूकी

महिला आयोग की अध्यक्षा स्वाति मालीवाल से दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल के पीए बिभव कुमार द्वारा की गई बदसलूकी की जितनी निंदा की जाए कम है। जो महिला देश में महिला-अधिकार के लिए संघर्षरत है और उत्पीड़ित महिलाओं को राहत दिला रही है उसी के साथ बदसलूकी अत्यंत अशोभनीय और चिंतनीय है। विडंबना है कि इस प्रकरण पर आम आदमी पार्टी-आप के मुखिया अरविंद केजरीवाल एक शब्द नहीं बोले और उनकी पार्टी की एक महिला मंत्री पूरे मामले पर लीपापोती का प्रयास कर रही हैं। मालीवाल प्रकरण से आप और अरविंद केजरीवाल की असलियत जनता की नजरों में उजागर हो चुकी है। मालीवाल प्रकरण इस बात का उदाहरण है कि प्रधानमंत्री मोदी पर तानाशाह बनने का आरोप लगाने वाले केजरीवाल अपनी पार्टी में मत-भिन्नता तथा उभरते नेताओं को कैसे कुचलते हैं। मालीवाल को भाजपा का एजेंट बता कर अपने पीए को बचाने के प्रयास और निंदनीय हैं। कहा जाता है कि पीए ने केजरीवाल की असलियत उजागर करने की धमकी दी थी, इसलिए उसके बचाव का प्रयास हो रहा है। इस प्रकारण से स्पष्ट है कि आप कोई राजनीतिक पार्टी न होकर बेईमानों का गिरोह है।

- शकुंतला महेश नेनावा, इंदौर

भयभीत केजरीवाल

अरविंद केजरीवाल ने कहा है कि यदि जनता लोकसभा चुनाव में इंडिया गठबंधन को चुनती है तो फिर मुझे जेल नहीं जाना पड़ेगा। वैसे केजरीवाल को सुप्रीम कोर्ट के आदेश से 2 जून को फिर पुलिस के समक्ष हाजिर होकर जेल जाना पड़ेगा। यह अलग बात है कि 4 जून को परिणाम आने के बाद नई सरकार का गठन होने और उसे केजरीवाल प्रकरण पर निर्णय करने में कितना समय लगेगा। वैसे तो सारे संकेत इसी बात के हैं कि नरेन्द्र मोदी तीसरी बार भारत के प्रधानमंत्री बनने जा रहे हैं और वे भ्रष्टाचार-विरोधी अभियान तेज कर सकते हैं। चुनाव प्रचार में केजरीवाल तथा इंडिया गठबंधन के नेता चाहे जो कहें, पर वे सभी यह हकीकत जानते हैं। ऐसे में केजरीवाल भाजपा-समर्थक मतदाताओं में भय पैदा करने के लिए 75 वर्ष की आयु में मोदी के इस्तीफे, अमित शाह को प्रधानमंत्री बनाने तथा मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ को हटाने जैसी अफवाहें फैलाने में जुटे हैं। भयभीत केजरीवाल यह समझ ही नहीं पा रहे हैं कि देश की आम जनता और खासकर भाजपा-समर्थकों में मोदी, शाह और योगी का सम्मान सर्वोपरि तथा विवादों से परे है। इस प्रकार केजरीवाल अपनी हताशा और निराशा की ही अभिव्यक्ति कर रहे हैं।

- एमएम राजावत, शाजापुर

सरकार की जिम्मेदारी

सुप्रीम कोर्ट ने उत्तराखंड सरकार को फटकार लगाई है कि जंगलों में लगी आग की रोकथाम के लिए गंभीर और कारगर कदम क्यों नहीं उठाए गए हैं? सुप्रीम कोर्ट ने एक याचिका पर विचार करते हुए उत्तराखंड सरकार से पूछा था कि वन कर्मियों को चुनाव संबंधी कार्यों एवं चारधाम यात्रा प्रबंधन में क्यों लगाया गया है? सुप्रीम कोर्ट ने लचर व्यवस्था का हवाला देते हुए यह भी पूछा है कि आपने जंगलों में लगी आग की रोकथाम के लिए पर्याप्त फंड क्यों जारी नहीं किया एवम वन विभाग की रिक्तियां क्यों नहीं भरी जा सकी हैं? उम्मीद है कि सुप्रीम कोर्ट के कड़े रुख़ को देखते हुए उत्तराखंड सरकार वन-प्रबंधन तथा जंगलों को आग से बचाने के ठोस और कारगर उपाय करेगी। उत्तराखंड धार्मिक एवं प्राकृतिक पर्यटन की दृष्टि से एक समृद्ध राज्य है। यहां देश-विदेश से पर्यटक और श्रद्धालु चारधाम यात्रा पर आने के साथ ही हरिद्वार, ऋषिकेश एवं अन्य रमणीक पर्यटक स्थलों पर साल भर आते हैं। ऐसे में प्रदेश सरकार की जिम्मेदारी है कि वह चारधाम यात्रा प्रबंधन के साथ ही वनों व प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा की समुचित व्यवस्था करे।

- वीरेंद्र कुमार जाटव, दिल्ली

पाठक अपनी प्रतिक्रिया ई-मेल से
responsemail.hindipioneer@gmail.com
पर भी भेज सकते हैं।

www.jagran.com राष्ट्रीय संस्करण
दैनिक जागरण
सोमवार 20 मई, 2024

दैनिक जागरण

अच्छे विचार ही बेहतर व्यवहार की राह तैयार करते हैं

माओवादी भाषा

राहुल गांधी एक अर्से से जिस तरह उद्योगपतियों को खलनायक साबित करने और उन्हें निर्धन तबके का शत्रु बताने में लगे हुए हैं, वह अति वामपंथी विचार ही नहीं, बल्कि माओवादियों सरीखे सोच का परिचायक है। शायद यही कारण रहा कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने उन्हें निशाने पर लेते हुए यह कहा कि कोई भी उद्योगपति कांग्रेस शासित राज्य में निवेश करने से पहले पचास बार सोचेगा। यह स्वाभाविक ही है, क्योंकि राहुल गांधी लगातार उद्योगपतियों पर हमला कर रहे हैं। हालांकि वह यह काम पिछले आम चुनावों के समय से ही करते चले आ रहे हैं, लेकिन इस चुनाव में उन्होंने अपने तेवर कुछ अधिक तीखे कर लिए हैं। वह अंबानी और अदाणी को खास तौर पर निशाने पर ले रहे हैं। इसके अलावा देश भर में घूम-घूमकर यह कह रहे हैं कि मोदी सरकार केवल चंद उद्योगपतियों के ही हित में काम करती है। संभवतः राहुल गांधी यह जानबूझकर भूल रहे हैं कि अंबानी, अदाणी और ऐसे ही अन्य उद्योगपति 2014 के बाद सामने नहीं आए। वे तो कांग्रेस के जमाने में ही फले-फूले। यह विचित्र है कि राहुल गांधी इसके बावजूद अंबानी और अदाणी पर हमला करने में लगे हुए हैं कि उनकी ओर से कांग्रेस शासित राज्यों में निवेश किया जा रहा है। स्पष्ट है कि यह निवेश तभी संभव हो पा रहा है जब कांग्रेस शासित राज्य उन्हें निवेश के लिए आमंत्रित कर रहे हैं। इसका सीधा अर्थ है कि कांग्रेस के मुख्यमंत्री भी राहुल गांधी की बातों से सहमत नहीं। इसका उदाहरण अदाणी समूह की ओर से कांग्रेस शासित तेलंगाना में निवेश किया जाना है। इसके पहले राजस्थान में अशोक गहलोत की सरकार के समय भी अदाणी समूह ने राज्य में भारी-भरकम निवेश की घोषणा की थी।

समझना कठिन है कि यदि राहुल गांधी को इन उद्योगपतियों से इतनी ही चिढ़ है तो वे अपने मुख्यमंत्रियों को इसके लिए रोकते क्यों नहीं कि अमुक-अमुक उद्योगपति उनके यहां निवेश न करने पाएं। राहुल गांधी उद्योगपतियों को कठघरे में खड़ा करके केवल धन का सृजन करने वालों को ही लांछित नहीं कर रहे हैं, बल्कि उद्यमशीलता पर प्रहार भी कर रहे हैं। वह बार-बार गरीबों की तो बात करते हैं, लेकिन यह समझने के लिए तैयार नहीं कि गरीबों का भला तब होगा जब देश में ज्यादा से ज्यादा उद्योग लगेंगे। यह अतिवादी वाम विचार ही है कि सब कुछ सरकार को करना चाहिए। गरीबों के उत्थान समेत आर्थिक मामलों में राहुल गांधी के जैसे प्रतिगामी विचार हैं, उनका तो कांग्रेस के वरिष्ठ नेता और विशेष रूप से पी. चिदंबरम और पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह भी कभी समर्थन नहीं करेंगे। मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली संप्रग सरकार ने वैसी आर्थिक नीतियों को नहीं अपनाया था, जैसी राहुल गांधी चाह रहे हैं। इस पर आश्चर्य नहीं कि राहुल गांधी जो भाषा बोल रहे हैं, उसे उनके इर्द-गिर्द के चंद लोग ही दोहरा रहे हैं।

किसान नेताओं की जिम्मेदारी

पंजाब में किसान संगठनों के खिलाफ कारोबारियों एवं व्यापारियों की बढ़ती नाराजगी को गंभीरता से लिए जाने की आवश्यकता है। किसानों संगठनों को अपनी आवाज सरकार तक पहुंचाने के लिए किसी ऐसे तरीके का प्रयोग नहीं करना चाहिए जिससे लोगों की परेशानी बढ़ती जाए और कारोबार एवं व्यापार को नुकसान पहुंचे। दुर्भाग्य से ऐसा ही हो रहा है। किसानों के नेशनल हाईवे और रेल ट्रैक पर धरने के कारण जनता परेशान है। इसके अलावा करोड़ों का कारोबार भी प्रभावित हो रहा है। लंबे समय तक जब ऐसा होगा तो स्वाभाविक है कि कारोबारियों का धैर्य जवाब देगा। किसानों के धरने के कारण ट्रेनें आठ से दस घंटे तक विलंब से चल रही हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि बहुत से लोग पंजाब आने से कतराने लगे हैं। इनमें दूसरे प्रदेशों के कारोबारी, व्यापारी भी हैं और पर्यटक भी। अमृतसर में होटल व्यवसाय बुरी तरह से प्रभावित हो रहा है। इन सबका असर राज्य की आर्थिकी पर भी पड़ना स्वाभाविक है। पंजाब पर तीन लाख करोड़ रुपये से ज्यादा का कर्ज है। राज्य इससे बाहर तभी निकल सकता है जब राजस्व बढ़े और ज्यादा से ज्यादा निवेश हो। इसके लिए यह आवश्यक है कि राज्य का माहौल इसके अनुकूल हो। किसानों के धरने के कारण यदि पंजाब को नुकसान हो रहा है तो इस पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए। किसान नेताओं को इस बारे में गंभीरता से सोचना चाहिए कि आखिर क्या कारण है कि जो व्यापारी एवं कारोबारी उनके संघर्ष को समर्थन देते आए हैं वही अब उनके खिलाफ आंदोलन की घोषणा करने लगे हैं। किसान नेताओं को अपनी जिम्मेदारी से मुंह नहीं मोड़ना चाहिए।

किसान संगठनों के नेताओं को सोचना चाहिए कि जो व्यापारी एवं कारोबारी उनके संघर्ष को समर्थन देते आए हैं वही अब उनके खिलाफ क्यों होने लगे हैं?

चुनावी विमर्श से गायब जरूरी मुद्दे

हृदयनारायण दीक्षित

सारा काम सरकारें ही नहीं कर सकतीं। सामाजिक दायित्वबोध भी आवश्यक है। इसलिए यह जरूरी है कि महत्वपूर्ण मुद्दों पर विमर्श हो

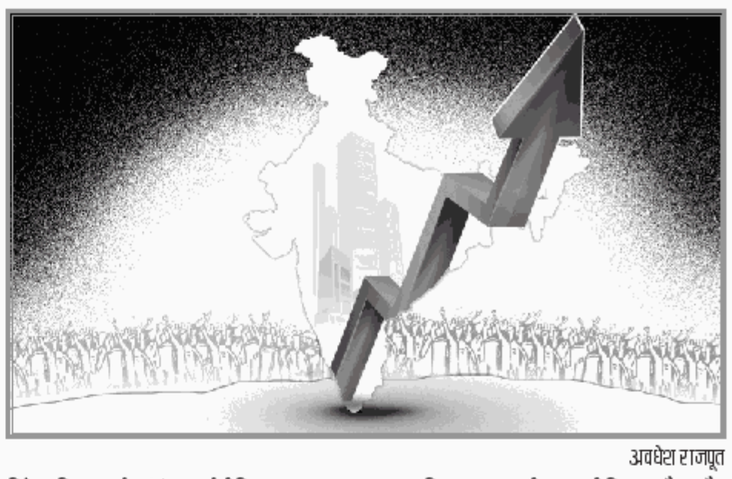

अवधेश राजपूत

संसदीय चुनाव में आज पांचवें चरण का मतदान है। लोकतंत्र में मतदान का अधिकार नागरिकों को अवसर देता है कि सरकार कैसी हो और उन पर कौन शासन करे? यह सत्ता के दावेदारों की विचारधारा, रीति, नीति और दृष्टिकोण को भी जांचने और इच्छानुसार मतदान का अवसर भी होता है। मतदान केवल अधिकार नहीं, उत्तरदायित्व भी है। मतदान से नागरिकों की राजनीतिक इच्छा प्रकट होती है। मतदाताओं के पक्ष को समझा जाता है। चुनाव में मतदाता के सामने भिन्न-भिन्न विचार वाले दल आश्वासन देते हैं। मतदाता उपलब्ध विचारों और वादों में अपने सपनों वाली सरकार बनाने के लिए वोट देते हैं। मताधिकार मूल्यवान है।

चुनाव राष्ट्रीय विमर्श का अवसर होते हैं। बहस और विमर्श, वाद-विवाद और संवाद भारत की प्राचीन परंपरा है। संप्रति पूरा देश सभा या संसद जैसा है। यहां प्रत्येक मतदाता अपनी इच्छा वाले देश और समाज के लिए सजग है। राष्ट्रीय चिंता के सभी विषयों पर राष्ट्रीय विमर्श की आवश्यकता है, लेकिन वर्तमान चुनाव में बुनियादी सवालों पर राष्ट्रीय विमर्श का अभाव है। राष्ट्र सर्वोपरिता, राष्ट्रीय एकता और अखंडता, संविधान के प्रति निष्ठा एवं भारत की विश्व प्रतिष्ठा जैसे विषय आधारभूत हैं। यह विषय किसी न किसी रूप में हमेशा राष्ट्रीय विमर्श में रहते हैं, लेकिन वर्तमान चुनाव में पृष्ठभूमि में चले गए हैं। हम भारत के लोग संस्कृति के कारण दुनिया के प्राचीनतम राष्ट्र हैं। यहां विविधता और बहुलता सतह पर है, लेकिन इन सबको एक सूत्र में बांधे रखने वाली सांस्कृतिक एकता चुनावी विमर्श में नहीं है। राष्ट्र से भिन्न कोई भी अस्मिता अलगाववाद की प्रेरक होती है। राजनीतिक दल एक दूसरे पर सांप्रदायिक होने का आरोप लगाया करते हैं, मगर सांप्रदायिकता की परिभाषा नदारद है। चुनावी विमर्श में सांप्रदायिकता के निराकार और साकार खतरे पर विमर्श होना चाहिए था।

सेक्युलर विदेशी विचार है। राजनीति में बहुधा इसका दुरुपयोग होता है। व्यावहारिक अर्थ में यह अल्पसंख्यकवाद का पर्याय है। छद्म सेक्युलरवाद भी विमर्श में नहीं है। राष्ट्र के समग्र विकास में प्रशासनिक सेवाओं की मुख्य भूमिका है। प्रशासनिक अमला सरकारी नीतियों का क्रियान्वयन करता है। प्रशासनिक सुधारों पर अनेक आयोग बन चुके हैं, लेकिन प्रशासन की गुणवत्ता प्रश्नवाचक रहती है। इसी तरह अर्थनीति सबसे महत्वपूर्ण विषय है। यह राष्ट्रीय समृद्धि की संवाहक होती है। महाभारत में नारद ने युधिष्ठिर से पूछा, 'क्या आप अर्थ चिंतन करते हैं- चिंतयसि अर्थम्?' अर्थनीति पर सतत राष्ट्रीय विमर्श अनिवार्य है।

राष्ट्र का आत्मविश्वास होता है राष्ट्रीय विमर्श। भूमंडलीय ताप में वृद्धि अंतरराष्ट्रीय समस्या है तो भारत भी उससे अछूता नहीं रह सकता। इसके बावजूद भूमंडलीय ताप चुनावी विमर्श से बाहर है। जल और जीवन पर्यायवाची हैं। जल प्रदूषण स्वास्थ्य का बड़ा शत्रु है। भूजल में शीशा, आर्सेनिक, फ्लोराइड और क्रोमियम जैसे जानलेवा रसायन पाए गए हैं। हर साल लगभग ढाई करोड़ लोग जल प्रदूषण जनित बीमारियों के शिकार होते हैं। औद्योगिक इकाइयों का विषैला पानी और कचरा भूगर्भ जल में मिलते हैं। बोतलबंद पानी और भी खतरनाक है। जल में उपस्थित रसायन बोतल की प्लास्टिक से रासायनिक क्रिया करते हैं और जल दूषित हो जाता है। वायु प्रदूषण से भारत भी पीड़ित है। राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में भी धूल भरी वायु लोगों के श्वसन तंत्र पर आक्रामक रहती है। ऐसे चिंताजनक मुद्दे भी चुनावी विमर्श में नहीं हैं।

कृषि भारत की आजीविका है और किसानों के लिए व्यवसाय भी है। ऋषि और कृषि भारतीय श्रम साधना के शीर्ष पर रहे हैं। चिकित्सा महत्वपूर्ण विषय है। जन स्वास्थ्य और आनंद साथ-साथ रहते हैं। राष्ट्रीय पौरुष का संबंध जनस्वास्थ्य से है। स्वस्थ जीवन के लिए उत्तम परिस्थितियां पाना मौलिक अधिकार है। बीमार लोग राष्ट्रीय उत्पादन में भागीदार नहीं हो सकते। उत्पादन की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र का सक्रिय मानव संसाधन है। अन्य योजनाएं टाली जा सकती हैं, लेकिन चिकित्सा और स्वास्थ्य नहीं। निजी अस्पताल अपेक्षाकृत महंगे हैं। राष्ट्रीय संवेदना का अभाव है। गरीबों को पांच लाख तक की चिकित्सा उपलब्ध कराने में 'आयुष्मान भारत' योजना की प्रशंसा होती है। इस दिशा में काफी काम हुआ है, लेकिन जन स्वास्थ्य और कृषि भी राष्ट्रीय विमर्श में नहीं हैं।

प्रतियोगी परीक्षाओं में असफल होने पर युवाओं में आत्महत्या की प्रवृत्ति दिखाई पड़ी है। यह राष्ट्रीय चिंता का विषय है। ऐसे विषय सरकार के अलावा सामाजिक उत्तरदायित्व से संबंधित हैं। भारतीय इतिहास का विरूपण पिछले 10-15 वर्षों से चर्चा का विषय है। इस इतिहास में वास्तविक तथ्य नहीं हैं। दुर्भाग्य से यह चुनाव में कोई मुद्दा नहीं है। समान नागरिक संहिता संविधान का नीति निदेशक तत्व है। पिछले कई वर्षों से यह राष्ट्रीय चर्चा का विषय है, लेकिन चुनावी विमर्श का मुद्दा नहीं है।

सारा काम सरकारें ही नहीं कर सकतीं। सामाजिक दायित्वबोध भी जरूरी है। सड़क, पानी और बिजली आदि के सवालों पर अनेक गांवों में मतदान के बहिष्कार के समाचार भी सुनाई दिए हैं। इसलिए महत्वपूर्ण मुद्दों पर विमर्श जरूरी है। संवैधानिक लोकतंत्र में अनेक संस्थाएं हैं। भारतीय लोकतंत्र अति प्राचीन है। जब भारत में लोकतंत्र फल-फूल रहा था तब प्लेटो जैसे विद्वान लोकतांत्रिक मूल्यों पर चिंतन कर रहे थे। प्लेटो ने लिखा है कि जनतंत्र समान और असमान को समान भाव से एक तरह की समानता प्रदान करता है।' प्लेटो के अनुसार जनतंत्र में अव्यवस्था है। भारतीय लोकतंत्र के लिए भी अव्यवस्था की बात कही जा सकती है। इसके लिए भी महत्वपूर्ण मुद्दों पर राष्ट्रीय विमर्श जरूरी है। संविधान निर्माताओं ने उद्देशिका में ही सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय के साथ प्रतिबद्धता व्यक्त की है। व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता अखंडता सुनिश्चित करने वाली, बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़संकल्प व्यक्त किया है। चुनाव इन सब पर चर्चा और विमर्श का महत्वपूर्ण अवसर है।

(लेखक उत्तर प्रदेश विधानसभा के पूर्व अध्यक्ष हैं)

response@jagran.com

दूषित जल का गहराता संकट

पंकज चतुर्वेदी

पानी जीवन के लिए अपरिहार्य है, लेकिन यदि वही दूषित हो जाए तो वह प्राणों पर संकट का कारण भी बन सकता है

चिंतित करता नदियों में बढ़ता प्रदूषण। फाइल

पिछले दिनों दिल्ली से सटे गाजियाबाद की एक हाउसिंग सोसायटी में दूषित पानी के कारण सात सौ से अधिक लोगों को डायरिया हो गया। दूषित पानी से नहाने के चलते त्वचा रोग के मरीज तो लगभग हर घर में हैं। गाजियाबाद-नोएडा में यह हाल करीब हर ऊंची इमारतों वाली सोसायटी का है। यहां अधिकांश में जल आपूर्ति भूमिगत जल से है और पीने के पानी का आश्रय या तो बोतलबंद पानी या फिर खुद के आरओ हैं। आज देश के अन्य हिस्सों में भी कमोबेश यही स्थिति है। देश के अलग-अलग हिस्से अब नल से बदबूदार पानी आने या फिर हैंडपंपों से गंदे पानी की शिकायतों से परेशान हैं। पानी धरती के लिए प्राण है, लेकिन यदि जल दूषित हो जाए तो यह प्राण हर भी सकता है। पांच साल पहले पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सात जिलों में पीने के पानी से कैंसर से मौत का मसला जब गर्माया तो एनजीटी (नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल) में प्रस्तुत रिपोर्ट ने इसका कारण हैंडपंपों का दूषित पानी पाया गया। जबकि 2016 में ही एनजीटी ने नदी किनारे के हजारों हैंडपंप बंद कर गांवों में पानी की वैकल्पिक व्यवस्था के आदेश दिए थे। हालांकि कुछ हैंडपंप बंद हुए, कुछ पर लाल निशान लगाने की औपचारिकता हुई, मगर साफ पानी का विकल्प न मिलने से मजबूर ग्रामीण वही जहर पी रहे हैं। तमाम सरकारी योजनाओं पर अरबों रुपये खर्च भी हुए, लेकिन आज भी करीब 3.77 करोड़ लोग हर साल दूषित पानी के इस्तेमाल से बीमार पड़ते हैं। अनुमान है कि पीने के पानी के कारण बीमार होने वालों से 7.3 करोड़ कार्य दिवस बर्बाद होते हैं। इससे आर्थिकी को करीब 39 अरब रुपये का नुकसान होता है।

हर घर जल की केंद्र की योजना इस बात में तो सफल रही है कि गांव-गांव में हर घर तक पाइप बिछ गए, लेकिन आज भी इन पाइपों में आने वाला 75 प्रतिशत पानी भूजल है। गौरतलब है कि ग्रामीण भारत की 85 प्रतिशत आबादी अपनी पानी की जरूरतों के लिए भूजल पर निर्भर है। एक तो भूजल का स्तर लगातार गहराई में जा रहा है। दूसरा भूजल एक ऐसा संसाधन है, जो यदि दूषित हो जाए तो उसका निदान बहुत कठिन होता है। यह बात संसद में बताई गई है कि देश में करीब 6.6 करोड़ लोग अत्यधिक फ्लोराइड युक्त पानी के घातक नतीजों से जूझ रहे हैं। उन्हें दांत खराब होने, हाथ-पैरे टेढ़े होने जैसे रोग झेलने पड़ रहे हैं। जबकि करीब एक करोड़ लोग अत्यधिक आर्सेनिक वाले पानी के शिकार हैं। कई जगहों पर पानी में आयरन की ज्यादा मात्रा भी बड़ी परेशानी का सबब है। नेशनल सैंपल सर्वे आफिस (एनएसएसओ) की 76वीं रिपोर्ट बताती है कि देश में 82 करोड़ लोगों को उनकी जरूरतों के मुताबिक पानी नहीं मिल पा रहा है। महज 21.4 प्रतिशत लोगों को ही घर तक सुरक्षित जल उपलब्ध है। सबसे दुखद है कि नदी-तालाब जैसे भूतल जल का 70 प्रतिशत हिस्सा बुरी तरह प्रदूषित है। सरकारें इस बात को स्वीकार कर रही हैं कि 78 प्रतिशत ग्रामीण और 59 प्रतिशत शहरी घरों तक स्वच्छ जल उपलब्ध नहीं है। यह भी विडंबना है कि हर घर तक पानी पहुंचाने की परियोजनाओं पर 89,956 करोड़ रुपये से अधिक खर्च होने के बावजूद सरकार इस लक्ष्य को प्राप्त करने में विफल रही है। आज भी लगभग 19,000 गांव ऐसे हैं, जहां पीने के साफ पानी का कोई नियमित साधन नहीं है।

पूरी दुनिया में खासकर विकासशील देशों में जलजनित रोग एक बड़ी चुनौती हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) और यूनिसेफ का अनुमान है कि अकेले भारत में हर रोज 3,000 से अधिक लोग दूषित पानी से उपजने वाली बीमारियों के शिकार हो रहे हैं। गंदा पानी पीने से दस्त और आंत में सूजन, पेट में दर्द और ऐंठन, टायफाइड, हैजा, हेपेटाइटिस जैसे रोग अनजाने में शरीर में घर बना लेते हैं। ये भयावह आंकड़े सरकार के ही हैं कि भारत में एक बड़ी संख्या में बच्चे हर साल गंदे पानी से उपजी बीमारियों के चलते मर जाते हैं। देश के 158 जिलों के कई हिस्सों में भूजल खारा हो चुका है और उनमें प्रदूषण का स्तर सरकारी सुरक्षा मानकों को पार कर गया है। हमारे देश में ग्रामीण इलाकों में रहने वाले तकरीबन 6.3 करोड़ लोगों को पीने का साफ पानी तक मयस्सर नहीं है। इसके कारण बीमारियों के साथ-साथ कुपोषण के मामले भी बढ़ रहे हैं। पर्यावरण मंत्रालय और केंद्रीय एजेंसी 'एकीकृत प्रबंधन सूचना प्रणाली' (आइएमआइएस) द्वारा 2018 में पानी की गुणवत्ता पर कराए गए एक सर्वे के मुताबिक राजस्थान में सबसे ज्यादा 19,657 बस्तियां और यहां रहने वाले 77.70 लाख लोग दूषित पानी पीने से प्रभावित हैं। आइएमआइएस के मुताबिक पूरे देश में 70,736 बस्तियां फ्लोराइड, आर्सेनिक, लौह तत्व और नाइट्रेट सहित अन्य लवण एवं भारी धातुओं के मिश्रण वाले दूषित जल से प्रभावित हैं। इस पानी की चपेट में 47.41 करोड़ आबादी आ गई है।

देश में पेयजल से इस जहर के प्रभाव को शून्य करने के लिए जरूरी है कि पानी के लिए भूजल पर निर्भरता कम हो और नदी-तालाब आदि सतही जल में गंदगी मिलने से रोका जाए। वैसे तो भूजल के अंधाधुंध इस्तेमाल को रोकने और भूजल को दूषित करने वालों पर अंकुश के लिए कानून बनाए गए हैं, लेकिन ये कागजों से बाहर नहीं आ पाए हैं। नदी-तालाब को जहरीला बनाने में तो किसी ने भी कसर छोड़ी नहीं है। आज समाज को 20 रुपये का एक लीटर पानी पीना मंजूर है, परंतु पीढ़ियों से सेवा कर रहे पारंपरिक जल-संसाधनों को सहेजना नहीं। यह अंदेशा सभी को है कि आने वाले दशकों में पानी को लेकर सरकार और समाज को बेहद मशक्कत करनी होगी। वह दिन नहीं देखना पड़े इसके लिए जरूरी है कि सभी एकजुट होकर पानी और इसके स्रोतों को बचाने में जुट जाएं।

(लेखक पर्यावरण मामलों के जानकार हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

मित्रता

मैत्री संबंध से संपूर्ण प्रकृति बंधी है। वृक्ष, नदी, थलचर, जलचर, नभचर और सभी जीव-जंतु साहचर्य से जुड़े हैं। वे परस्पर आकर्षण से आबद्ध हैं। पृथ्वी पर मैत्री भाव से ही सभ्यता का विकास हुआ। यह मैत्री भाव ही प्रेम और स्नेह का चुंबक बनता है। वैसे तो मानव जन्म से ही मैत्री व्यवहार एवं व्यवस्था से परिचित हो जाता है, क्योंकि उसके समीप जो भी आता है, वह वात्सल्य रस की धारा में अवश्य तैरता उतराता है। कोई-कोई तो इसमें डूब ही जाता है, सो मैत्री भाव की उत्पत्ति शैशव काल से ही हो जाती है। दोस्ती ने युग-युग में आदर्शों की पताकाएं फहराई हैं। सच्ची दोस्ती का चरित्र पावन होता है।

पशु-पक्षी, पेड़-पौधे भी मित्र तत्व के पोषक माने गए हैं। अनेक विज्ञानी इस तथ्य को सिद्ध कर चुके हैं कि जीव मात्र ही नहीं, निर्जीव निघंटु भी मैत्री प्रभाव से संलिप्त हैं। इसलिए मित्रता को नैसर्गिक संबंध स्वीकार किया जाता रहा है। समस्त संबंध ऊंचे-ऊंचे तो हो सकते हैं, लेकिन वे मित्रता जैसे गहरे नहीं हो सकते। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने मित्रता को जीवन का सूत्र बनाया। श्रीकृष्ण ने मित्रता को जीवन का मंत्र बनाया। मित्रता का तंत्र जो भक्ति रूप में विद्यमान है, वह अवतारों की पृष्ठभूमि है।

चाहे कोई व्यक्ति हो या समाज हो अथवा देश हो-मित्र भाव सभी में निर्माण एवं विकास की शक्ति को स्थापित करता है। पिता-पुत्र, भाई-भाई, पति-पत्नी तथा अन्य सभी संबंधों का धागा केवल मैत्री तत्व में पिरोया गया होता है। जहां मैत्री का आधार नहीं, वहां कोई संबंध सरस एवं सरल नहीं हो सकता। जब मनुष्य पर विपत्ति आती है तब एक सच्चा मित्र ही मदद करता है, बाकी तो सिर्फ मुंह से सहानुभूति जताते हैं। कहते हैं सच्चा प्रेम दुर्लभ है, लेकिन सच्ची मित्रता उससे भी दुर्लभ। संसार भर को ज्ञात है कि मित्र भाव ने भारत को शांतिप्रिय देश बनाया है।

डा. राघवेंद्र शुक्ल

रील्स बनाने के चलन ने बढ़ाई मुश्किल

सुनीता मिश्रा

हर मंदिर के कुछ नियम और परंपराएं हैं, जिनका सभी देशवासियों को पालन करना चाहिए, ताकि किसी की भी धार्मिक भावनाएं आहत न हों

बीते दिनों उत्तराखंड सरकार ने चारों धामों (केदारनाथ, बदरीनाथ, यमुनोत्री और गंगोत्री) में मंदिर परिसर के 50 मीटर के दायरे में रील्स और वीडियो बनाने पर प्रतिबंध लगाने का अहम फैसला लिया। वहीं देवभूमि में तीर्थयात्रियों की भारी भीड़ को देखते हुए वीआइपी दर्शन पर भी 31 मई तक रोक लगा दी गई है। मुख्यमंत्री पुष्कर धामी ने पुलिस-प्रशासन के अधिकारियों को सुगम, सुरक्षित एवं सुव्यवस्थित चारधाम यात्रा के लिए श्रद्धालुओं के पंजीकरण की व्यवस्था को मजबूत बनाने और चेक पोस्ट पर जांच का भी निर्देश दिया है, ताकि सभी श्रद्धालु आसानी से दर्शन कर सकें।

पिछले कुछ वर्षों में इंटरनेट मीडिया का चलन तेजी से बढ़ा है और हर दिन एक्टिव यूजर्स की संख्या तेजी से बढ़ रही है। वर्ष 2023 की एक रिसर्च में दावा किया गया कि दुनिया की आधे से ज्यादा आबादी इस समय इंटरनेट मीडिया पर एक्टिव है। ज्यादातर लोग फेसबुक, वाट्सअप, इंस्टाग्राम, यूट्यूब एवं एक्स जैसे इंटरनेट मीडिया प्लेटफार्म का इस्तेमाल मशहूर होने और पैसा कमाने के लिए कर रहे हैं। इंस्टाग्राम पर लाइक्स, शेयर, व्यूज और सब्सक्राइबर बढ़ाने के लिए रील्स वाली बीमारी आजकल भारत के कई तीर्थस्थलों पर भी देखने को मिल रही है। लोग वहां भगवान के दर्शन, भजन-कीर्तन, ध्यान के लिए कम, बल्कि घूमने और रील्स बनाने के लिए अधिक पहुंच रहे हैं। ध्यान दें कि इस वर्ष अप्रैल में उज्जैन के महाकालेश्वर मंदिर के प्रतिबंधित क्षेत्र में रील्स बनाने का मामला सामने आया था। अयोध्या, मथुरा, काशी, केदारनाथ, उज्जैन का महाकाल मंदिर और अन्य तीर्थ स्थल हिंदुओं के पवित्र धार्मिक स्थल हैं। ये नाच-गाने और अश्लीलता फैलाने की जगहें नहीं हैं। यहां इस तरह की चीजें करना अशोभनीय हैं। केदारनाथ मंदिर वर्षों से भगवान शिव के भक्तों के लिए आस्था का केंद्र है। मंदिर के कपाट खुलने के बाद बड़ी संख्या में श्रद्धालु यहां पहुंचते हैं। प्राचीन होने के कारण इस मंदिर के प्रति लोगों की आस्था दूर-दूर तक है। ऐसे में रील्स बनाकर यहां की शांति भंग करने का अधिकार किसी को भी नहीं है।

हर मंदिर के कुछ नियम और परंपराएं होती हैं, जिनका सभी देशवासियों को पालन करना चाहिए, ताकि किसी की भी धार्मिक भावनाएं आहत न हों। आइपीसी की धारा 295ए के तहत धार्मिक भावनाओं को आहत करने के इरादे से जानबूझकर और दुर्भावनापूर्ण कार्य करने या इससे संबंधित वक्तव्य देने वाले को दोषी माना गया है। ऐसे में उत्तराखंड सरकार द्वारा चारधाम यात्रा में हो रही अव्यवस्था, धार्मिक आस्था को ठेस न पहुंचे और बड़ी आपदा से बचने के लिए उठाए गए कदम सराहनीय हैं।

(लेखिका स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

अब समाधान की हो बात

'कब खत्म होगी अंकों की अंधी दौड़' शीर्षक से लिखे अपने आलेख में प्रणय कुमार ने कहा है कि हमें अपनी संततियों को अंकों की अंतहीन दौड़ में झोंकने के बजाय उनके समग्र व्यक्तित्व विकास पर ध्यान देना चाहिए। लेखक ने युवा पीढ़ी की इस समस्या को बहुत ही विस्तार से वर्णित किया है, किंतु इस समस्या का समाधान किसी के पास नहीं है। छात्र तो मजबूर हैं। देश में किसी भी संस्थान में प्रवेश पाने और रोजगार हासिल करने की केवल मात्र यही एक व्यवस्था है कि कौन कागज के टुकड़े पर अधिक अंक प्राप्त करता है। फिर छात्रों, अभिभावकों और कोचिंग संस्थानों को भला-बुरा कहने अथवा सीख देने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। अभी कोई भी ऐसी टेस्टिंग प्रणाली या एजेंसी नहीं है, जो किसी छात्र के व्यक्तित्व का मूल्यांकन कर सके। फिर इस विषय पर ऐसे विचारों को रखने से कोई लाभ नहीं दिखता। इस समस्या पर विचार रखने के बजाय इसका समाधान खोजने की अब ज्यादा आवश्यकता है, जो दूर-दूर तक नजर नहीं आता। जब तक ऐसा नहीं होता तब तक बच्चे अंकों के पीछे भागते रहेंगे। इस अंतहीन प्रतिस्पर्धा में कुछ अपना जीवन दांव पर लगाते रहेंगे।

फूल सिंह ढाका, रोहतक

बोझ बनती अंकों की प्रतिस्पर्धा

'कब खत्म होगी अंकों की अंधी दौड़' शीर्षक से युक्त आलेख में प्रणय कुमार ने जिस बेबाकी से बोर्ड परीक्षाओं में अंकों की अंतहीन प्रतिस्पर्धा के संबंध में सभ्य समाज को चेताया है, वह गौरतलब है। आज

मेलबाक्स

के दौर का अभिभावक जिस तरह से अपने पाल्य के समग्र व्यक्तित्व विकास की चिंता किए बिना उसे बचपन से ही परीक्षा में प्राप्त होने वाले अंकों की अंधी दौड़ में झोंक देता है, वह चिंतनीय है। कभी-कभी यह दबाव इतना अधिक होता है कि अंकों की प्रतिस्पर्धा विद्यार्थियों पर बोझ बन जाती है। बोर्ड परीक्षाओं में अभिभावकों का यह उतावलापन कुछ ज्यादा ही बढ़ जाता है, जो विद्यार्थियों के मानसिक दबाव का कारण बन जाता है। यह मानसिक दबाव विद्यार्थियों को एकांगी और अंतर्मुखी बना देता है। अंकों की प्रतिस्पर्धा के साथ ही विद्यार्थियों पर एक दूसरा दबाव अभिभावकों की चाहत के अनुरूप जाब पाने का रहता है। इस तरह के दबाव एक बालक के बचपन, किशोर के अल्हड़पन और युवाओं की अलमस्त जिंदगी को छीन लेते हैं। ऐसे में हर अभिभावक यह भूल जाता है कि ईश्वर प्रदत्त नियति लेकर पैदा होने वाला प्रत्येक बालक अपनी क्षमता और योग्यता में विशिष्ट है। बालक या बालिका को जो बनना होता है उस तरह की अभिरुचि उसमें बचपन से ही पनपने लगती है। समय रहते जो अभिभावक अपने पाल्य की इस अभिरुचि को पहचानकर उसकी क्षमता और योग्यता के अनुरूप शैक्षिक माहौल देने में सफल हो जाते हैं, उनके पाल्य अपनी अभिरुचि के क्षेत्र में आगे बढ़ कर श्रेष्ठ प्रदर्शन करते दिखाई देते हैं। इस दृष्टि से सही शिक्षा वही है, जो बालक को उसकी रुचि के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ बनाए।

डा. वीपी पांडेय, अलीगढ़

जागरूक हों मतदाता

संपादकीय आलेख ''मतदाताओं की उदासीनता के कारण'' पर राज कुमार सिंह ने विस्तार से चर्चा की है और चुनाव आयोग के भीषण गर्मी के मौसम, चुनाव कार्यक्रम का लंबा कार्यक्रम, त्रुटि रहित मतदाता सूची आदि अनेक बिंदुओं के अलावा राजनीतिक व्यवस्था की बिगड़ती छवि और कोढ़ में खाज का काम कर रहे अनाप-शनाप वादे आदि को केंद्र बिंदु बनाया है। हम ईमानदारी से आत्ममंथन और चिंतन करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि मतदान के गिरते प्रतिशत के लिए हम और आप मतदाता भी जिम्मेदार हैं। हम अपने तीज त्योहार कितने उत्साह से मनाते हैं और उसके लिए पहले से तैयारी कर लेते हैं। ठीक उसी प्रकार यदि हम चुनाव को एक पर्व, उत्सव के रूप में मनाने का दृढ़ निश्चय कर लें तो चुनाव आयोग और राजनीतिक दलों वाले कारण बेमानी नजर आएंगे और निःसंदेह एक अच्छी और स्थायी सरकार बना पाएंगे।

कैलाश मेहरा, गुरुग्राम

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें:
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल: mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. नॉन एग्जीक्यूटिव चेयरमैन-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग,रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 011-43166300, नोएडा कार्यालय : 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 *इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई/रेल शुल्क ₹-2 अतिरिक्त।

****

49.3 प्रतिशत छात्रों के पास स्मार्टफोन तक पहुंच है ग्रामीण भारत में, डेवलपमेंट इंटेलिजेंस यूनिट (डीआइयू) द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण की रिपोर्ट के अनुसार।

आजकल

स्मार्टफोन के उपयोग पर पाबंदी के निहितार्थ

शिक्षा जगत में स्मार्टफोन के उपयोग को लेकर समय-समय पर कई तरह के मामले प्रकाश में आते रहते हैं। हाल ही में राजस्थान के सरकारी स्कूलों में स्मार्टफोन के उपयोग पर रोक लगाने का निर्णय प्रदेश के शिक्षा मंत्री ने लिया है। उनका कहना है कि स्कूलों में शिक्षक अपने व्यक्तिगत कार्यों के लिए स्मार्टफोन का उपयोग अधिक करते हैं। इससे बच्चों की पढ़ाई का नुकसान होता है। आनलाइन पढ़ाई को वैकल्पिक व्यवस्था के रूप में माने जाने के बाद से स्कूलों में इसपर रोक लगाए जाने के निर्णय के निहितार्थ भी समझे जाने चाहिए

स्मार्टफोन ने शिक्षा की राह आसान अवश्य की है, परंतु इसके कई दुष्प्रभाव भी धीरे-धीरे सामने आ रहे हैं। फाइल

डा. अमरजीत कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, माधव विवि, सिरोही, राजस्थान

यह सही है कि स्कूलों में शिक्षक के स्मार्टफोन का अनुचित उपयोग शिक्षकों की संवेदनहीनता को दर्शाता है। स्कूलों में स्मार्टफोन के उपयोग को रोकना चर्चा का विषय है। पिछले वर्ष आंध्र प्रदेश के शिक्षा विभाग ने कक्षाओं के अंदर शिक्षकों द्वारा स्मार्टफोन के उपयोग को प्रतिबंधित करने का आदेश जारी किया था। वहीं हाल ही में राजस्थान के शिक्षा मंत्री द्वारा भी कुछ ऐसा ही निर्णय लिया गया है। जहां वैश्विक महामारी कोरोना ने शिक्षा जगत को आनलाइन माध्यमों के उपयोग को बाध्यकारी और जरूरी बना दिया, वहीं सभी सरकारी और निजी शिक्षण संस्थानों में प्रशासनिक कार्यों में स्मार्टफोन के बढ़ते प्रयोग को नकारा नहीं जा सकता है। ऐसे में इस पर वृहत चर्चा किए जाने की आवश्यकता है।

शिक्षकों के स्मार्टफोन के प्रयोग को सीमित करना और बच्चों को मोबाइल आधारित एप से शिक्षा के आनलाइन माध्यमों को प्रदान करना कहीं न कहीं एक विरोधाभास को जन्म देता है। कई मामलों में पाया गया है कि जब शिक्षक क्लास के दौरान मोबाइल का प्रयोग करते पाए गए हैं तो उससे शिक्षण व्यवस्था का प्रभावित होना स्वाभाविक है। ऐसे में शिक्षकों के स्कूलों में स्मार्टफोन के अनुचित प्रयोग पर नकेल लगाने की आवश्यकता है। महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि हाल के वर्षों में निजी और सरकारी शिक्षण संस्थानों में प्रशासनिक कार्यों के साथ-साथ बच्चों को गृहकार्य और सूचना देने के लिए वाट्सएप ग्रुप का प्रचलन आम बात हो गई है, जबकि कुछ शिक्षण संस्थानों द्वारा उपरोक्त कार्यों के लिए मोबाइल एप का सहारा लिया जा रहा है। ऐसे में शिक्षण संस्थानों में मोबाइल के प्रयोग पर बढ़ती निर्भरता यह दर्शाती है कि शिक्षण संस्थानों में केवल मोबाइल के प्रयोग प्रतिबंधित करना उचित नहीं है, जबकि इसके लिए एक व्यापक रूपरेखा पर कार्य करने की आवश्यकता है। मसला यह है कि क्या मोबाइल पर बढ़ती निर्भरता इसके उपयोग को सीमित सकता है?

नकारात्मक प्रभाव : बच्चों में स्मार्टफोन के बढ़ते उपयोग के नकारात्मक प्रभाव की बात करें तो संयुक्त राष्ट्र की वैश्विक शिक्षा निगरानी रिपोर्ट 2023 ने उन स्थितियों में स्कूलों में स्मार्टफोन पर प्रतिबंध लगाने का समर्थन किया है, जहां प्रौद्योगिकी के साथ शिक्षण से छात्रों के सीखने में सुधार नहीं होता है या यदि यह छात्रों पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। इसमें इस बात पर प्रकाश डाला गया कि मोबाइल डिवाइस से निकटता के कारण छात्रों के सीखने में सुधार नहीं होने के विपरीत ध्यान में भटकाव होता है। वहीं अध्ययनों से पता चलता है कि 14 देशों में प्रौद्योगिकी के साथ शिक्षण से छात्रों के सीखने पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जबकि औसतन चार में से एक से भी कम ने स्कूलों में स्मार्टफोन के उपयोग पर प्रतिबंध लगाया है। इसने शोध अध्ययनों का हवाला देते हुए यह भी बताया कि स्कूलों में मोबाइल फोन पर प्रतिबंध लगाने से शैक्षणिक प्रदर्शन में सुधार होता है, खासकर कम प्रदर्शन वाले छात्रों के लिए। ऐसे में शिक्षकों और छात्रों को स्मार्टफोन के प्रयोग को सीमित करना होगा जिसके लिए एक व्यापक कार्ययोजना पर अमल करने की आवश्यकता है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि मोबाइल के बढ़ते प्रयोग ने शिक्षण व्यवस्था को काफी हद तक प्रभावित किया है। वैश्विक महामारी कोरोना ने जिस तरह शिक्षण व्यवस्था में आनलाइन माध्यमों का प्रचलन बढ़ाया है, विगत वर्षों में शिक्षण संस्थानों में ब्लेंडेड लर्निंग को प्रमुखता दी जा रही है। ब्लेंडेड लर्निंग में छात्र पाठ्यक्रम का एक हिस्सा कक्षा में पूरा करते हैं और बाकी हिस्सा आनलाइन या डिजिटल संसाधनों का उपयोग करके पूरा करते हैं। ऐसे में स्कूली शिक्षा भी आनलाइन माध्यमों के बढ़ते प्रयोग से अछूती नहीं रह सकती है। जहां पिछले कई वर्षों से राजस्थान में शिक्षण संस्थानों में मोबाइल फोन पर प्रतिबंध लगाने की कवायद की जा रही है, वहीं इंदिरा गांधी मुफ्त स्मार्टफोन योजना 2023 में लाभार्थियों में राजस्थान के सभी सरकारी स्कूलों में नौवीं से 12वीं कक्षा में छात्राएं भी शामिल थीं। उत्तर प्रदेश स्वामी विवेकानंद युवा सशक्तीकरण योजना के तहत 25 लाख युवाओं को स्मार्टफोन और टैबलेट बांटे जाने की योजना है। ऐसे में शिक्षण संस्थानों में बच्चों और शिक्षकों में स्मार्टफोन के बढ़ते प्रयोग पर लगाम लगाना प्रभावी प्रतीत नहीं होता है।

स्मार्टफोन पर नियंत्रण : देश के अधिकांश राज्यों ने कक्षाओं और स्कूल परिसरों में छात्रों के लिए मोबाइल पर प्रतिबंध लगाया है, जिसमें उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, दिल्ली, महाराष्ट्र, गुजरात आदि शामिल हैं। हालांकि महाराष्ट्र में शिक्षकों को शिक्षण कार्यों के लिए मोबाइल के प्रयोग के लिए अनुमति प्रदान कर दी गई है, जबकि गुजरात में मोबाइल पर प्रतिबंध स्कूलों के साथ साथ कालेजों में भी लगाया गया है। ऐसे में यह जाहिर है कि अधिकांश राज्यों द्वारा शिक्षण संस्थानों में मोबाइल पर प्रतिबंध लगाए गए हैं। यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि बच्चों और शिक्षकों पर शिक्षण कार्यों में मोबाइल के बढ़ते प्रयोग पर लगाम लगाने की जरूरत है। गौरतलब है कि ट्रांसफार्म रूरल इंडिया और रिसर्च एंड कम्युनिकेशंस के बीच एक सहयोग के अंतर्गत यह रिपोर्ट डेवलपमेंट इंटेलिजेंस यूनिट (डीआइयू) द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण से पता चला कि ग्रामीण भारत में 49.3 प्रतिशत छात्रों के पास स्मार्टफोन तक पहुंच है। हालांकि जिन माता-पिता के बच्चों के पास स्मार्टफोन तक पहुंच है, उनमें से 76.7 प्रतिशत ने कहा कि उनके बच्चे मुख्य रूप से वीडियो गेम खेलने के लिए इसका उपयोग करते हैं। सर्वेक्षण में कहा गया है कि स्मार्टफोन तक पहुंच रखने वाले छात्रों में से 56.6 प्रतिशत ने डिवाइस का उपयोग फिल्में डाउनलोड करने और देखने के लिए किया, जबकि 47.3 प्रतिशत ने उनका उपयोग संगीत डाउनलोड करने और सुनने के लिए किया। केवल 34 प्रतिशत अध्ययन डाउनलोड के लिए स्मार्टफोन का उपयोग करते हैं और 18 प्रतिशत ट्यूटोरियल के माध्यम से आनलाइन शिक्षण का उपयोग करते हैं। ऐसे में यह स्पष्ट है कि बच्चों में शिक्षण कार्यों में स्मार्टफोन का बढ़ता उपयोग उनके शिक्षण कार्यों में बाधा केवल स्कूल तक सीमित न होकर घर तक है, ऐसे में छात्रों और शिक्षकों पर स्कूलों में स्मार्टफोन पर प्रतिबंध लगाना कदम काफी नहीं है।

प्रभावी शिक्षण प्रणाली : विगत वर्षों में भारत सहित कई देशों ने स्कूलों में स्मार्टफोन के उपयोग पर प्रतिबंध लगाया है, ताकि स्कूली शिक्षण प्रणाली को प्रभावी बनाया जा सके। यानी विगत वर्षों में शिक्षण कार्यों में स्मार्टफोन पर निर्भरता बढ़ी है। सबसे पहले स्मार्टफोन पर बढ़ती निर्भरता को कम करने और प्रभावी वैकल्पिक माध्यमों को उपयोग में लाने की प्रवृत्ति पर जोर देने की आवश्यकता है। अनेक शिक्षक संघों का यह मानना है कि बिना किसी वैकल्पिक व्यवस्था के स्कूलों में स्मार्टफोन के उपयोग पर प्रतिबंध लगाने से शिक्षण संस्थानों के प्रशासनिक और शैक्षणिक कार्यों में बाधा आती है। ऐसे में एक व्यापक रणनीति पर काम करने की आवश्यकता है, ताकि बच्चों का शिक्षण कार्यों पर स्मार्टफोन के उपयोग से हो रहे नकारात्मक प्रभाव को काम किया जा सके।

गौरतलब है कि बच्चों के लिए स्मार्टफोन के उपयोग को प्रतिबंधित करने का मुख्य उद्देश्यों में शिक्षा के साथ उनका स्वास्थ्य भी है। महत्वपूर्ण है कि एक रिपोर्ट के अनुसार दो से 17 वर्ष की आयु के बीच के युवाओं के एक अध्ययन से पता चलता है कि उच्च स्क्रीन समय खराब स्वास्थ्य का प्रमुख कारण है। इस कारण बच्चों के मानसिक और शारीरिक विकास प्रभावित होते हैं।

स्कूलों में स्मार्टफोन पर कम हो निर्भरता

स्मार्टफोन पर बढ़ती निर्भरता को फिलहाल तो हमें नए नजरिये से देखना होगा। शिक्षा व्यवस्था में इसके योगदान की अनदेखी नहीं की जा सकती है। फिर भी असम सरकार के स्कूल शिक्षा विभाग ने 20 मार्च को एक अधिसूचना जारी करते हुए शिक्षा सेतु एप के माध्यम से शिक्षकों और छात्रों, दोनों के लिए दैनिक उपस्थिति की ट्रैकिंग अनिवार्य कर दी है। यह निर्देश एक अप्रैल, 2024 से लागू किया गया है, जिसका उद्देश्य शैक्षिक प्रणाली के भीतर जवाबदेही बढ़ाना और उपस्थिति प्रबंधन को सुव्यवस्थित करना है। वहीं राजस्थान सरकार के दो कर्मचारियों ने ग्रामीण छात्रों को मुफ्त में हिंदी में अध्ययन सामग्री उपलब्ध कराने के लिए आठ वर्षों में 250 से अधिक मोबाइल एप्लिकेशन विकसित किए हैं। पिछले वर्ष राज्य में शिक्षा के उन्नयन के लिए राज्य सरकार को मोबाइल एप दान करने के लिए राजस्थान भामाशाह शिक्षा विभूषण सम्मान 2019-20 एवं शिक्षा के क्षेत्र में मोबाइल एप द्वारा ई-गवर्नेंस के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए राजस्थान ई-गवर्नेंस अवार्ड 2016-17 प्रदान किया गया।

उपरोक्त दोनों खबरें कहीं न कहीं शिक्षा जगत में स्मार्टफोन पर बढ़ती निर्भरता को दर्शाती हैं। ऐसे में यहां यह ध्यान देने की बात है कि स्कूलों में मोबाइल के प्रयोग पर प्रतिबंध लगाना और उस पर बढ़ती निर्भरता को कम करना, दोनों एक साथ नहीं चल सकते हैं। वैश्विक कोरोना माहमारी ने आनलाइन शिक्षण प्रणाली बच्चों के स्वास्थ्य से जुड़ी चिंता के मद्देनजर वर्ष 2020 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय (जिसे अब शिक्षा मंत्रालय कर दिया गया है) द्वारा जारी डिजिटल शिक्षा के लिए दिशानिर्देशों के अनुसार, स्कूल कक्षा पहली से आठवीं के लिए प्रतिदिन अधिकतम डेढ़ घंटे और कक्षा नौवीं से बारहवीं के लिए प्रतिदिन तीन घंटे की लाइव आनलाइन कक्षाएं आयोजित कर सकते हैं। किंडर गार्टन, नर्सरी और प्री-स्कूल के लिए माता-पिता के साथ बातचीत के लिए प्रतिदिन केवल 30 मिनट का स्क्रीन समय अनुशंसित है। ऐसे में शिक्षण कार्यों में आनलाइन माध्यमों और स्मार्टफोन पर बढ़ती निर्भरता पर एक व्यापक कार्ययोजना बनाए जाने की आवश्यकता है।

(अमरजीत कुमार)

खरी-खरी

प्रेम करने की उम्र

पूरन सरमा

वैसे तो यह विषय विवाद का है कि प्रेम करने की भी उम्र होनी चाहिए या नहीं, परंतु मेरा मानना है कि इसके लिए उम्र की सीमा रेखा निर्धारित होनी चाहिए। इसके अभाव में मामला इतना होच-पोच हो गया है कि जिनकी उम्र प्रेम करने की है, वे मुंह बिचका रहे हैं तथा बिना दांत वाले चने चबा रहे हैं।

खैर हमारे देश का यह दुर्भाग्य रहा है कि जिसे चाहिए, उसे कुछ नहीं तथा जिन्हें खाने-पीने का शौक नहीं, वे लोग गुलाब-जामुनों को ठोकर मार रहे हैं। हालांकि प्रेम की आयु सीमा निर्धारित करते ही प्रौढ़ एवं अधेड़ लोगों को परेशानी होगी, परंतु युवा लोगों का भाग्य चमक उठेगा। हमारे यहां के बूढ़ों को जवान फूटी आंख भी नहीं सुहाते। सारे काम स्वयं ही करते रहना चाहते हैं। खास तौर से मुहब्बत का रोग तो बड़ा बुरा है। किसी भी उम्र में हो जाए। दवा नहीं मिले तो, वैसे मरे और दवा मिल जाए तो मौत का आना लगभग तय है। इसके बाद भी लोग डरते नहीं और प्रेम करते हैं।

मेरे पड़ोसी रूप किशोर जी इस मामले में काफी आगे हैं। जब देखा तो कभी कराहते तो कभी छटपटाते हुए। उम्र 50 के आसपास है, परंतु न लोगों को पता चलने देते हैं और न स्वयं को ही। बालों में डाई कराके, प्रेमिका की प्रतीक्षा में अपलक राह निहारते रहते हैं। पिछले 30 वर्षों से वे इस काम में लगे हैं। परंतु परिणाम वही ढाक के तीन पात। एक दिन मैंने उनसे जाकर पूछा, 'सुना है, आप प्रेम करते हैं?'

मेरे प्रश्न पर लजा गए। आंखों में भरपूर लाज का आंचल लोढ़कर बोले, 'हां, करता तो हूं। परंतु समझ में नहीं आता कि क्या करूं?'

'क्या मतलब?'

'मतलब यही कि 30 वर्षों से दाढ़ी बनाते रहे, कपड़ों की क्रीज बनाए रखी तथा लेटेस्ट फैशन के कपड़े पहने, पर किस्मत में खाक छानना लिखा था-सो छान रहे हैं।'

'आपके साथ धोखा हुआ है?'

'प्रेम में धोखा तो सफलता का द्योतक माना जाता है। धोखा भी हो जाता तो तसल्ली कर लेता, पर मुझे किसी ने धोखा भी नहीं दिया।'

मैंने कहा, 'कोई बात नहीं, आपकी उम्र अभी प्रेम करने की है, आप लगे रहिये, कामयाबी अवश्य मिलेगी।'

पोस्ट

चाबहार बंदरगाह के लिए ईरान संग भारत की साझेदारी मुस्लिम देशों के साथ विकास और सहयोग को बढ़ावा देने की उसकी प्रतिबद्धता को रेखांकित करती है। यह पहल एक स्पष्ट संदेश देती है कि भारत की प्राथमिकताएं सांप्रदायिक विभाजन से परे प्रगति, एकता और समावेशी विकास में निहित हैं। जितेंद्र शर्मा@capt_ivane

किसी मैच में दर्शकों की पसंदीदा टीम भले ही हमेशा जीत दर्ज न करे, लेकिन लोकतंत्र में जरूर अपनी पसंद से जीत सुनिश्चित होती है। नागरिकों के पास मतदान एक बहुत बड़ी शक्ति है, जिसका उन्हें सदुपयोग करना चाहिए।
सचिन तेंदुलकर@sachin_rt

यश दयाल प्रेरणा और परिश्रम के प्रतीक हैं। रिंकू सिंह से पांच छक्के खाने के बाद उनकी वापसी की उम्मीद किसी ने नहीं की होगी, पर यश दयाल ने बता दिया कि समय बदलता है, आप बस मेहनत करते रहिए।
राहुल दुबे@Therahul_dubey

मैदान से बाहर गिरा धौनी का छक्का सीएसके के हाथ से प्लेआफ का टिकट छिनने की वजह बना। इससे यश दयाल को दूसरी गेंद मिल गई। सूखी गेंद से वह सही ठिकाने पर गेंद डालने में सक्षम हुए, जो गीली गेंद से मुश्किल हो रहा था।
तेजस्वी उडुपा@udupendra

जागरण जनमत कल का परिणाम

क्या धार्मिक स्थलों पर वीआइपी दर्शन की व्यवस्था पर रोक लगाई जानी चाहिए?

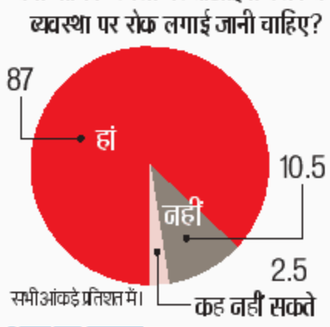

सभी आंकड़े प्रतिशत में।

आज का सवाल

क्या आपको लगता है कि महेंद्र सिंह धौनी को अब आइपीएल से भी संन्यास ले लेना चाहिए?

परिणाम जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है।

जनपथ

मिली जमानत इसलिए जाकर करो प्रचार,
पर भाई तो खा गया सब आचार-विचार।
सब आचार-विचार पिटी इक अबला नारी,
कहीं न अब पड़ जाय जमानत इनको भारी।
थू-थू चारों ओर हो रही मिलती लानत,
लगता है नुकसान दे रही उन्हें जमानत!
- ओमप्रकाश तिवारी

अजय जायसवाल
राज्य ब्यूरो प्रमुख, उत्तर प्रदेश

उत्तर प्रदेश डायरी

चुनावी मुद्दों के बीच कांग्रेस का डबल राशन

कांग्रेस अध्यक्ष मल्लिकार्जुन खरगे ने लखनऊ में आकर आइएनडीआइए की सरकार बनने के बाद गरीबों को हर महीने 10 किलो मुफ्त अनाज देने की घोषणा कर उत्तर प्रदेश में डबल इंजन की सरकार की विकास योजनाओं के सामने एक ऐसा दांव चला है जो भाजपा को उसके ही अस्त्र से पराजित करने की कोशिश है। इस चुनावी रण में राम मंदिर, मथुरा, पाकिस्तान, पीओके, मटन, चिकन, मंगलसूत्र, इलेक्टोरल बांड, औरंगजेब, कसाब, दुर्योधन, अडाणी, अंबानी आदि से लेकर तमाम योजनाओं-परियोजनाओं संबंधी घोषणाओं, संकल्पों और गारंटी पर चुनावी चर्चा के बीच अब यह डबल राशन का मामला आया है और चुनावी राजनीति के केंद्र में भी है। मल्लिकार्जुन खरगे ने यह घोषणा तब की है, जबकि जब चार चरण में देश की 70 प्रतिशत संसदीय सीटों पर मतदान हो चुका है। लगभग 97 करोड़ मतदाताओं में से 45 करोड़ से ज्यादा अपने मताधिकार का प्रयोग कर चुके हैं। हालांकि, प्रदेश की 80 लोकसभा सीटों में से आधी से कम 39 सीटों पर ही वोटिंग हुई है।

खरगे की घोषणा के बाद अगले तीन चरण में देश की 163 लोकसभा सीटों के लिए ही मतदान होना है। इनमें उत्तर प्रदेश की 41 सीटें हैं। पांचवें चरण में आज आठ राज्यों की 49 सीटों पर मतदान हो रहा है। खरगे की घोषणा के बाद से राहुल गांधी से लेकर कांग्रेस के दूसरे छोटे-बड़े नेता अपने भाषणों से लेकर इंटरनेट मीडिया तक पर 10 किलो मुफ्त अनाज देने की बात को प्रमुखता से उठा रहे हैं। खरगे के वादे को हवा-हवाई न समझा जाए, इसलिए अगले ही दिन कर्नाटक के उप मुख्यमंत्री व प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष डीके शिवकुमार मीडिया को बताते हैं कि उनके राज्य (कर्नाटक) में गरीबों को प्रति माह मुफ्त में 10 किलो अनाज दिया जा रहा है। केंद्र की मोदी सरकार पर आरोप लगाते हुए वह कहते हैं कि गरीबों को 10 किलो अनाज देने के मामले में उसने हाथ खड़े कर दिए थे। फिर भी, अपने वादे को पूरा करने के लिए कर्नाटक सरकार स्वयं के दम पर गरीबों को पांच किलो अनाज देने के साथ ही पांच किलो अनाज खरीदने का पूरा पैसा दे रही है।

डीके के बाद 17 मई को पार्टी के राष्ट्रीय प्रवक्ता अभय दुबे सामने आते हैं और 'मोदी की महंगाई पर गाज, मिलेगा 10 किलो अनाज' के साथ ही दाल और तेल तक देने की भी घोषणा कर देते हैं। दुबे तो यह भी बताते हैं कि दरअसल, भोजन का अधिकार देने के पीछे कांग्रेस की यूपीए सरकार का ही 11 वर्ष पुराना राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून है। विपक्षी गठबंधन में शामिल सपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष अखिलेश यादव तो गरीबों को मुफ्त में सीधे ब्रांडेड आटा देने की बात कह रहे हैं।

दरअसल, मुफ्त राशन सहित अन्य लाभार्थी योजनाओं के लाभ से खासतौर पर गरीब वंचित समाज का झुकाव भाजपा की ओर है, जिससे लोकसभा चुनाव में धरातल पर भाजपा को बड़ा लाभ मिलता दिख रहा है। यही कारण माना जा रहा है कि योजना से प्रभावित मतदाताओं को अपनी ओर मोड़ने की कोशिश में कांग्रेस ने अब मुफ्त अनाज को डबल देने का घोषणा की है। चूंकि बसपा का कोर वोट बैंक वंचित समाज के गरीब भी मुफ्त राशन से प्रभावित है जिससे बसपा के सामने चुनाव में बेहतर प्रदर्शन की कड़ी चुनौती है, इसीलिए बसपा प्रमुख मायावती कहती हैं कि मुफ्त राशन से गरीबों का भला होने वाला नहीं है। वह वंचित समाज को यह समझाने की कोशिश भी करती हैं कि मुफ्त राशन देकर भारतीय जनता पार्टी सरकार कोई उपकार नहीं कर रही है। लोगों द्वारा सरकार को दिए गए टैक्स के धन से ही मुफ्त राशन दिया जा रहा है।

डबल मुफ्त अनाज देने की घोषणा पर भाजपा भी अपने तरीके से कांग्रेस-सपा को घेर रही है। भारतीय जनता पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष भूपेन्द्र सिंह चौधरी सवाल उठाते हैं कि कांग्रेस को 70 वर्ष के शासन में गरीबों को मुफ्त राशन देने की याद क्यों नही आई? वह कहते हैं कि मल्लिकार्जुन खरगे शायद भूल गए हैं कि जब केंद्र में कांग्रेस सरकार थी और यहां खाद्यान्न घोटाला हुआ था, तब समाजवादी पार्टी की ही सरकार थी। लोग भूले नहीं हैं कि कांग्रेस एवं सपा सरकार के समय ही बुंदेलखंड में भुखमरी से लोग आत्महत्या कर रहे थे।

वैसे तो घोषणाओं-संकल्पों-गारंटी के दम पर मतदाताओं को रिझाने के लिए सभी पार्टियों की लंबी फेहरिस्त है, लेकिन जिस तरह से विपक्षी दल कांग्रेस, सपा और बसपा मुफ्त अनाज के मुद्दे को उठे रहे हैं, उससे यह तो साफ है ही कि मुफ्त अनाज ने चुनाव में खासतौर से गरीब मतदाताओं में गहरी पैठ बना रखी है।

लखनऊ में 15 मई को प्रेस कांफ्रेंस के दौरान मल्लिकार्जुन खरगे और अखिलेश यादव। फाइल

छत्तीसगढ़ डायरी

नक्सलवाद पर बेनकाब विपक्ष

सतीश चंद्र श्रीवास्तव
संपादकीय प्रभारी, रांची

आजकल नक्सली मुश्किल में हैं। परिस्थितियां बदल रही हैं। वर्ष 2024 के साढ़े चार महीने में ही 110 से अधिक नक्सली मारे जा चुके हैं। घबराए नक्सलियों में आत्मसमर्पण की होड़ जैसी लग गई है। इस कारण नक्सल नेतृत्व हड़बड़ाहट में है। नक्सलियों के संरक्षक और समर्थक भी बौखलाहट में हैं। 10 मई को बीजापुर के पीडिया में 12 नक्सलियों के मारे जाने के बाद दावा किया जा रहा है कि नक्सलियों के नाम पर ग्रामीणों को मारा गया। कांग्रेसियों, वामपंथियों और कुछ आदिवासी संगठनों में भी बेचैनी है। इन संगठनों जांच कमेटियों ने गांव का दौरा कर निहत्थों को मारने का आरोप लगाया है। जिला प्रशासन द्वारा कराई जा रही न्यायिक जांच की रिपोर्ट अभी आई नहीं है, परंतु प्रचार पाने के लिए नक्सल समर्थक चौतरफा दबाव बनाने में लगे हैं।

दूसरी तरफ इस बार भाजपा सरकार भी तैयारी में है। प्रशासन ने मारे गए सभी 12 नक्सलियों के विरुद्ध आपराधिक प्रमाण एकत्रित कर लिए हैं। जल्द ही उनके विरुद्ध पूर्व में दर्ज मामलों की सूची सार्वजनिक किए जाने की संभावना है। 10 मई को मुठभेड़ के दौरान समर्पण करने वाली एक महिला नक्सली ने शनिवार को नक्सलियों की बदली रणनीति की पुष्टि भी कर दी है। उसने बताया है कि नक्सली और उनके समर्थक फर्जी मुठभेड़ का आरोप लगाकर सरकार पर दबाव बनाने की रणनीतिक साजिश में जुट गए हैं। इसके लिए नक्सलियों को ग्रामीणों के कपड़े में रखा जा रहा है। मुठभेड़ में उनके मारे जाने पर तेंदूपत्ता एकत्र करने पहुंचे ग्रामीणों के मारे जाने की बात की जा रही है। जबकि तेंदुपत्ता तोड़ाई की जगह वहां से लगभग 20 किमी की दूरी पर है।

बदलाव को इन तथ्यों के साथ भी समझा जा सकता है कि पिछले साढ़े चार महीने में 400 से अधिक नक्सलियों ने समर्पण किया है तो लगभग 200 नक्सली गिरफ्तार भी किए जा चुके हैं। आसपास के 20 से 30 किलोमीटर क्षेत्र में सुरक्षा सुनिश्चित करने वाले 25 से अधिक कैंप भी इसी दौरान खुल चुके हैं तथा और 50 कैंप खोलने की प्रक्रिया जारी है। यहां ध्यान देने वाली बात यह भी है कि लगभग एक महीना पहले 16 अप्रैल को 29 नक्सलियों के मारे जाने पर भी पूर्व मुख्यमंत्री भूपेश बघेल ने नक्सलियों के नाम पर ग्रामीणों के मारे जाने का आरोप लगाया था। उस दौरान सभी नक्सलियों ने वर्दी पहन रखी थी, इसलिए आलोचना तेज होने पर बघेल ने अपना बयान वापस ले लिया था। इस बार नक्सली ग्रामीणों के कपड़े में थे। बघेल के साथ-साथ प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष दीपक बैज, वामपंथी नेता मनीष कुंजाम आदि भी मामले में कूद पड़े हैं।

दूसरी तरफ केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह और मुख्यमंत्री विष्णुदेव साय सहित अन्य भाजपा नेता इसी आलोक में कांग्रेस नेताओं और नक्सलियों के बीच साठ-गांठ का आरोप लगा चुके हैं। मई 2013 के झीरम कांड में कोंटा के विधायक कवासी लखमा की भूमिका अभी भी सवालों में है तथा जांच रिपोर्ट के सार्वजनिक होने का सभी को इंतजार है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने रविवार को झारखंड के घाटशिला में यह कहकर मामले की प्रासंगिकता और बढ़ा दी है कि कांग्रेस के शहजादे नक्सलियों की भाषा बोल रहे हैं। नक्सलियों के मारे जाने का आंकड़ा भी कांग्रेसियों के नक्सलियों के प्रति नरम हृदय होने के आरोपों को आधार दे रहा है। वर्ष 2018 में भाजपा सरकार के कार्यकाल में 112 नक्सली मारे गए थे, जबकि प्रदेश में कांग्रेस की सरकार बनते ही वर्ष 2019 में 65, वर्ष 2020 में 40, वर्ष 2021 में 51 नक्सली मारे गए। यह आंकड़ा और घटते हुए वर्ष 2022 में 30 और 2023 में मात्र 20 रह गया। इसके बदले में नक्सलियों ने वर्ष 2021 में 33 ग्रामीणों की हत्या की और 46 जवान बलिदान हुए। वर्ष 2023 में तो 20 नक्सलियों को ही मारा जा सका, जबकि नक्सलियों ने 41 ग्रामीणों को मार डाला तथा 25 जवान बलिदान हुए। इस तरह वर्ष 2001 से अब तक लगभग 1210 नक्सलियों को जवानों ने मार गिराया है तो बदले में लगभग 1750 ग्रामीणों की जान गई है और लगभग 1300 जवान बलिदान भी हुए हैं। वर्ष 2024 के पहले साढ़े चार महीने में ही 110 नक्सलियों को मार गिराया गया है और जवानों के बलिदान का आंकड़ा एक अंक में ही है।

स्पष्ट है कि बदलाव तो है। यह बदलाव हर स्तर पर दिखने भी लगा है। जनता जानना चाह रही है कि 1,750 से अधिक ग्रामीणों की मौत के लिए जिम्मेदार नक्सलियों के प्रति कांग्रेसियों और वामपंथियों में स्नेह क्यों है? लगभग 1,300 जवानों के बलिदान के लिए जवाबदेही कौन लेगा? यह बदलाव ही है कि सरकार अब समर्पण करने वाले नक्सलियों को मनचाहे गांव या शहर में मकान देने की योजना शुरू करने जा रही है। पुनर्वास नीति को और मजबूत बनाते हुए नौकरी के साथ-साथ कौशल विकास और स्वरोजगार की योजनाएं शुरू की गई हैं। उम्मीद की जानी चाहिए कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह की दो-तीन वर्ष के अंदर नक्सलियों के पूर्ण सफाए की रणनीति क्षेत्र की जनता के लिए विकास के नए द्वार खोलेगी।

बीजापुर जिले में 12 नक्सलियों की मौत की जांच करने पहुंचा कांग्रेस नेताओं का दल। सौ : कांग्रेस

****

महान लोकतंत्र को प्रगतिशील होना चाहिए, अन्यथा जल्द ही यह महान नहीं रह जाएगा। -थियोडोर रुजवेल्ट

दिल्ली-एनसीआर सहित देश का मध्य और उत्तरी हिस्सा गर्मी की भीषण लहरों से जूझ रहा है और मौसम विभाग के अनुमानों के अनुसार, जल्द राहत भी नहीं मिलती दिख रही है। गर्मी बढ़ने के साथ बिजली की खपत जिस तरह बढ़ी है, उससे बिजली संकट की आशंका भी गहराने लगी है।

पारा सबके पार

राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली सहित मध्य भारत और देश का उत्तर-पश्चिम हिस्सा भीषण गर्मी की लहर (हीटवेव) से जूझ रहा है और भारतीय मौसम विभाग के अनुमान जैसा इशारा कर रहे हैं, उससे गर्म हवाओं और लू से जल्द राहत मिलती नहीं दिख रही है। उत्तर-पश्चिम भारत के विभिन्न हिस्सों में बीते कुछ दिनों में तापमान जिस तरह 43 डिग्री के ऊपर पहुंच रहा है, उससे लोगों की मुश्किलों का अंदाजा लगाया जा सकता है। बीता शनिवार इस मौसम का सबसे अधिक गर्म दिन तो रहा ही, पश्चिमी दिल्ली के नजफगढ़ में अधिकतम तापमान 47.4 डिग्री सेल्सियस तक पहुंच गया, जो इस मौसम में अब तक का सर्वाधिक तापमान है। दरअसल, अप्रैल में पूर्व, उत्तर-पूर्व और दक्षिणी प्रायद्वीपीय भारत में रिकॉर्ड तोड़ अधिकतम तापमान देखा गया था। उस दौरान, पश्चिमी विक्षोभ के कारण दिल्ली में कुछ राहत रही, लेकिन अब स्थिति यह है कि मौसम विभाग के अनुसार, यह 13 साल बाद है, जब विगत 18 मई को राजधानी और आसपास के क्षेत्रों में तापमान 43 डिग्री पार कर गया। मौसम विभाग के अनुसार, हीटवेव की परिभाषा अमूमन क्षेत्रों की भौगोलिक स्थिति पर निर्भर करती है। सामान्य तौर पर देखें, तो अगर अधिकतम तापमान मैदानी इलाकों में 40 डिग्री या उससे अधिक, तटीय इलाकों में 37 डिग्री या उससे अधिक और पहाड़ी इलाकों में 30 डिग्री या उससे अधिक दर्ज किया जाता है, तो हीटवेव की आशंकाएं गहराने लगती हैं। निस्संदेह गर्मी का यह कहर जलवायु परिवर्तन का नतीजा है, जिसके कारण मौसम की चरम स्थितियां आम होती जा रही हैं, जिससे सबसे ज्यादा परेशानी गरीब, मजदूर और उन वर्गों को होती है, जो निम्नतम सुविधाओं में जी रहे हैं। गर्मी के साथ हाल के दिनों में जिस तरह से बिजली का संकट पैदा हुआ है, उसने आम लोगों की तकलीफें बढ़ा दी हैं। गर्मियों के इस मौसम में बिजली की मांग और आपूर्ति के बीच अंतर आम है। बिजली कंपनियां भले बढ़ी हुई मांग को पूरा करने का दावा कर रही हों, लेकिन खासकर

दिल्ली में बिजली ट्रिप करने की आवृत्ति लगातार बढ़ रही है। दरअसल, सरकारी आंकड़े बताते हैं कि पिछले वित्तीय वर्ष में भारत का जल विद्युत उत्पादन बीते चार दशक में सबसे ज्यादा गिरा है, जिसकी वजह से कई राज्यों को बिजली की गंभीर कमी का सामना करना पड़ सकता है। बंद पड़ी यूनिटों को दोबारा खोलकर समस्या से निपटने की कोशिश की जा रही है, लेकिन साल-दर-साल खराब हो रहे हालात बताते हैं कि सरकारों और नीति-नियंताओं को गर्मी की भीषण लहर से निपटने के लिए पहले से कहीं अधिक एहतियात बरतने और कहीं अधिक तैयारी रखने की जरूरत है।

अपने-अपने हिस्से का भारत

इंदिरा शासन के अंत और मोदी के आगमन के बीच के ज्यादातर हिस्से में गठबंधन की खंडित राजनीति अपरिहार्य रही, जिसमें प्रत्येक धर्मनिरपेक्ष आदर्शवादी को अपने-अपने हिस्से का भारत टुकड़ों में मिला। आज जब निरंतरता की इस राजनीति की जगह नए विचार ले रहे हैं, तो पुराने सत्तावादियों की नींदें उड़ना स्वाभाविक है।

एस प्रसन्नराजन
संपादक
ओपन मैगजीन

अंतरराष्ट्रीय मीडिया के एक वर्ग व चिढ़े हुए घरेलू सियासी पंडितों द्वारा भारत को न्यायविहीन बताना और लोकतंत्र के मनमाने विश्लेषणों का उपयोग चेतावनी के तौर पर करना 2024 के लोकसभा चुनावों के विश्लेषण में एक परंपरा बनता दिख रहा है। यह सच है कि लोकतंत्र के प्रबंधन की कमियां और इसके सर्वोत्तम और निकृष्ट आवेगों का खुद के फायदे के लिए उपयोग करने वालों का आत्मविश्वास ही इसकी सीमाएं दर्शाता है। यह भी तो इसकी सीमा है, जिसमें इसे असहमति को प्रामाणिकता का जामा पहनाने के लिए विचारों का एक कमजोर मिश्रण माना जा रहा है। लेकिन फिलहाल, 'देश किस ओर जा रहा है' के विचारों के बाजार में 'लोकतंत्र को नियंत्रित करने' से जुड़े पन्ने उड़ते दिख रहे हैं। अलग-अलग तरह से सामने आने वाले इन विचारों और इरादों को अगर अनुभवों के तल पर तटस्थ रूप से तौला जाए, तो उदारवाद के नाम पर की जा रही राजनीति समझ में आती है।

इस संदर्भ में जो वाक्य बार-बार दोहराया जा रहा है, अब उसे ही देखिए-'भारत निरंकुशता की चपेट में है'। अगर 1989 से पहले के कम्युनिस्ट युग में नेता के उस विचार के दर्शन हुए, जो क्रांति की पौराणिक कथाओं से जन्मा और मुक्ति के आतंक में अपने चरम पर पहुंचा। तो वहीं, सोवियत युग के बाद के वक्त ने ऐसे 'शक्तिशाली नेता' का उदय देखा, जिसने अपनी ताकत से सवाल पूछने वालों को हतोत्साहित किया। ऐसे नेता उत्तर-साम्यवाद के विफल समाजों में ही नहीं, बल्कि आज भी संगठनों पर हावी होते दिख रहे हैं।

हंगरी में विक्टर ओर्बन हों या फिर रूस में व्लादिमीर पुतिन का नव-जारवाद तथाकथित शाही पतन के लिए लड़ी गई लड़ाई में घायल राष्ट्रीय गौरव को सांस्कृतिक हथियार में बदलने वाले नेताओं की जीत को ही दर्शाता है। इस सूची में जो एक नाम और जोड़ा जा सकता है,

वह है तुर्किये के एर्दोगन का, जो एक मुस्लिम देश में अतातुर्क-विरोध का चेहरा बने हैं, जो धर्मनिरपेक्षता की विरासत और इस्लामवाद के उफान के बीच फंसे हुए हैं। जाहिर है कि एर्दोगन के लोकतंत्र में राजनीतिक असहमति खतरनाक है।

लेकिन एक मजबूत नेता इनसे अलग भी है, जो अपनी ताकत का श्रेय लोकतंत्र को देता है। नरेंद्र मोदी जब 2014 में जीते थे, तब उन्हें मिले जनादेश ने गठबंधन को भारतीय राजनीति की अनिवार्यता मानने के विचार और कांग्रेसवाद की पुरानी परंपरा को, जिसमें आला कमान की गैर-सांविधानिक शक्तियां प्रथम परिवार के पास होती हैं, भी ध्वस्त कर दिया। उनसे पहले के नेता, जिन्हें पार्टी की उद्धारक महिला ने देश को सौंपा था, निर्देशों के लिए प्रधानमंत्री के पीछे से काम कर रही अलौकिक शक्ति को ताका करते थे।

आज ऐसे कई उदारवादी नेता हो सकते हैं, जो मोदी के बजाय ऐसे नेताओं को आदर्श विकल्प मानते हों और इन्हीं में सौम्य भारत की वह छवि देखते हैं, जिसे वे खो चुके हैं। इसका क्या मतलब है? इसका मतलब है कि ऐसे समय में जब चीजों को सिर्फ नकारना ही बदलाव के खिलाफ वाम-उदारवादियों की ढाल बन गई हो, तब ओढ़ी गई विनम्रता को भी नेतृत्व के विकल्प के तौर पर पेश करने की कोशिशें होती हैं। उल्लेखनीय है कि इंदिरा गांधी के शासनकाल के अंत और मोदी के आगमन के बीच के वक्त के ज्यादातर हिस्से में हमने जड़ता और उतार-चढ़ाव देखे, हमने गठबंधन के ऐसे नेताओं को भी अपरिहार्य बनते देखा, जिनका संयुक्त मूल्य उनके व्यक्तिगत प्रभाव से कम था। गठबंधन की उस खंडित राजनीति में वाम पक्ष के प्रत्येक धर्मनिरपेक्ष आदर्शवादी को अपने-अपने हिस्से का भारत टुकड़ों में मिला। यह वह राजनीति थी, जिसमें हर किसी की नजर अपने फायदे पर थी।

लेकिन नरेंद्र मोदी के नेतृत्व ने सबकुछ बदल दिया। निरंतरता की राजनीति की जगह नए विचारों ने ली। सत्ता के प्रयोग में आए इस सांस्कृतिक बदलाव ने पुराने सत्तावादियों की नींदें उड़ा दीं। उन्हें हर ओर नकारात्मक चीजें ही दिख रही हैं। मोदी की प्रतिबद्ध राजनीति की जो दृढ़ता है, उसका सामना वे न कर पा रहे हैं, और न कर सकते हैं। यही वजह है कि अपने नैतिक सिद्धांतों के प्रति जवाबदेह नेता, गैर-सांविधानिक केंद्रों के प्रति जवाबदेह नेता की तुलना में कम स्वीकार्य होता है। और, यही वजह है कि भ्रष्टाचार के खिलाफ अभियान भ्रष्टाचार से जुड़ी सुर्खियों की तुलना में कम स्वीकार्य होता है।

यही वजह है कि 'बहुसंख्यकवाद' जैसे शब्दों का आकस्मिक प्रयोग कुछ लोगों को विकास को तुष्टीकरण से अलग करके देखने में सरकार की सांविधानिक ईमानदारी की अनदेखी करने की अनुमति देता है। वह शक्ति, जो धारक के नैतिक मानकों और लोगों की आकांक्षाओं की ऋणी होती है, वही दृढ़ विश्वास की राजनीति को वैध बनाती है। मोदी शायद भारतीय लोकतंत्र में ऐसे एकमात्र नेता हैं, जिन्हें ऐसी शक्तियों का इस्तेमाल करने के बावजूद उदार लोकप्रिय समर्थन मिला है।

शक्तियों को अपने हाथ में रखने की उनकी राजनीतिक शैली को निरंकुशता या अधिनायकवाद बताने का अर्थ उन्हें उदारवादियों के घिसे-पिटे फॉर्मूले के जरिये परिभाषित कर एक छोटे दायरे में सीमित करने जैसा होगा। उनके शासनकाल में भारत की प्रगति की सराहना अब परिचित चेतावनी के साथ करना, उस भारत के साथ जुड़ने की बौद्धिक बेईमानी को उजागर करता है, जो तेजी से अपनी सांस्कृतिक बाधाओं को दूर कर रहा है। लोकतंत्र को बचाने के लिए नैतिक साहस की जरूरत होती है। हमारे लोकतंत्र को एक व्यक्ति के उस जनादेश के प्रति दृढ़ विश्वास से खतरा कैसे हो सकता है, जिसे बचाए रखने के लिए वह लगातार संघर्ष कर रहा है?

edit@amarujala.com

जीवन धारा

मोपासां

सांस लेना, खाना-पीना, काम करना, सोना, सपने देखना और हम जो कुछ भी करते हैं, उसे एक न एक दिन खत्म होना ही है। सब कुछ झूठ है। जो चीज जिंदगी को जीने लायक बनाती है, वह है प्यार।

जिंदगी में सिर्फ एक ही अच्छी चीज है-प्यार

जीवन ढलान की तरह होता है। जब आप ऊपर जा रहे होते हैं, तो हमेशा शीर्ष की ओर देखकर खुश हो रहे होते हैं। लेकिन जैसे ही उस शीर्ष पर पहुंचते हैं और अचानक सड़क को ढलान की ओर जाते हुए देखते हैं, तो अपने जीवन का अंत (मृत्यु) दिखता है। दरअसल जीवन ऊपर की ओर आहिस्ता-आहिस्ता चढ़ता है, लेकिन नीचे की ओर तीव्र गति से आता है। असल में, मनुष्य की महत्वाकांक्षाएं अनंत होती हैं, पर वे कभी पूरी नहीं हो सकतीं। कई बार इन्सान न जाने कितने बुरे कर्म करते हुए सफलता की सीढ़ियों को चढ़ना चाहता है और इसके लिए वह सारे नैतिक मूल्यों को भुला देता है।

अब मेरे उपन्यास 'बेल अमी' को ही देख लीजिए। इसका मुख्य पात्र जॉर्जेस दुरॉय इतना महत्वाकांक्षी है कि उसने एक सामान्य पत्रकार से प्रधान संपादक बनने तक न जाने कितने भ्रष्ट आचरण किए। आगे बढ़ने के लिए वह अभिजात वर्ग की सफल महिलाओं से संबंध बनाता है। अपने पूर्व अधिकारी की विधवा पत्नी मैडम फॉरेस्टियर से शादी करता है, फिर उन्हें भी छोड़ देता है। वह कई भौतिक सफलताएं हासिल करने और कई महिलाओं से रिश्ते बनाने के बावजूद अंत तक असंतुष्ट ही रहता है। अंत में भी उसके जीवन में खालीपन ही रहता है। 'नेकलेस' कहानी में भी देख सकते हैं। मैथिल डि लॉइसेल नाम की महिला काफी सुंदर है, लेकिन वह अपने साधारण जीवन से खुश नहीं है। वह एक कार्यक्रम में जाने के लिए अन्य महिला से मांगकर गले का हार ले जाती है। संयोग से वह हार चोरी हो जाता है। जब महिला यह बात अपने पति को बताती है, तो उसे उस हार के जैसा ही दूसरा हार बनवाने के लिए अपनी वर्षों की कमाई लगानी पड़ती है। यह कहानी बताती है कि जब हम अपनी क्षमता से अधिक दिखावे की ओर भागते हैं, तो हमारे पास दुख के अलावा कुछ नहीं आता। अत्यधिक भौतिक सुख की चाह ईर्ष्या और बेईमानी की ओर धकेलती है। आप भौतिक संसाधनों के पीछे कितना भी दौड़ें, लेकिन वे आपको संतुष्टि नहीं दे सकते। ये भौतिकवादी या बीमार विचार उस बुखार से भी ज्यादा घातक होते हैं, जिससे शरीर को काफी क्षति पहुंचती है। क्योंकि बुखार के बाद व्यक्ति के फिर से स्वस्थ होने की संभावना होती है, लेकिन बीमार विचार से ग्रस्त मनुष्य आसानी से ठीक नहीं होता। अब सोचिए हमारी जिंदगी में क्या है? सांस लेना, खाना-पीना, काम करना, सोना, सपने देखना और हम जो कुछ भी करते हैं, उसे एक न एक दिन खत्म होना ही है। दरअसल इस जिंदगी में सब कुछ झूठ है, सब कुछ संभव है और सब कुछ संदिग्ध है। आप किस चीज के लिए तरसते हैं? प्यार, पैसा, आलिंगन आदि के लिए ही न। लेकिन जिस दिन आपका हकीकत से सामना होगा, उस दिन सारा भ्रम टूट जाएगा। फिर पछतावे और रोने के अलावा कुछ नहीं बचेगा। जिंदगी में सिर्फ एक ही अच्छी चीज है और वह है प्यार। और एक निश्चितता है, वह है मृत्यु। बाकी सब बेकार।

सूत्र

मुलाकातें ही जिंदगी

दुनिया ने हमारी प्रवृत्ति का मुकाबला करने के लिए कुछ नियम बनाए हैं। उन्हीं नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत करेंगे, तो आंतरिक प्रसन्नता भी मिलेगी। संघर्ष जीवन का एक ऐसा स्वाद है, जिसे सुविधाभोगी कभी नहीं जान पाएंगे। लोगों से मुलाकातें ही जीवन को जीने के लायक बनाती हैं। देश व परिजनों से प्यार कीजिए। प्यार ही जीवन की सबसे अच्छी चीज है।

दूसरा पहलू

अमेरिका के कई राज्यों में चीनी नागरिकों को घर देने से इन्कार किया जा रहा है, वे चीनियों को सुरक्षा के लिए खतरा मान रहे हैं।

चीनियों का अमेरिकी सपना टूट रहा है

वर्षों तक डॉर्मिटरी और घटिया अपार्टमेंट्स में रहने के बाद लिजा ली अपने नए घर में जाने में ज्यादा देर नहीं करना चाहती। मियामी के वित्तीय जिले में एक बेडरूम वाले उनके फ्लैट से नदी दिखती है, और उसके पड़ोसी भी शांत रहना ज्यादा पसंद करते हैं। इसलिए 11 साल पहले कॉलेज की पढ़ाई के लिए चीन से अमेरिका आई और अब 28 साल की हो चुकी ली ने जब अपने घर के लिए आवेदन किया, और आवेदन मंजूर हो गया, तब फर्नीचर का ऑर्डर देने में उसने देर नहीं लगाई।

एमी क्वीन

फ्लोरिडा के नए कानून के तहत सैन्य संस्थानों, हवाई अड्डों और रिफाइनरियों के पास सुरक्षा के मद्देनजर चीनी नागरिकों को घर नहीं दिया जा सकता।

चीनी नागरिकों की शिकायत है कि अमेरिका में रहने का उनका सपना तोड़ा जा रहा है। उनका आरोप है कि अमेरिका में चीन-विरोधी भावनाएं मजबूत हो रही हैं। चीनी नागरिकों के खिलाफ लाए कानून को अदालत में चुनौती दी गई है।

लेकिन ठीक तभी चीजें उलट-पुलट हो गईं। उसके आवेदन को मिली मंजूरी पर सवाल उठाए गए, क्योंकि साउथ बीच में अमेरिकी राज्य के कोस्ट गार्ड का एक छोटा-सा आउटपोस्ट उसे मिलने वाले घर से अधिक दूर नहीं है। सवाल उठाने वाले ने फ्लोरिडा के नए कानून का हवाला दिया, जिसके तहत राज्य में सैन्य संस्थानों, हवाई अड्डों और रिफाइनरियों के पास सुरक्षा के मद्देनजर चीनी नागरिकों को घर नहीं दिया जा सकता। कानून के मुताबिक, ली को जेल जाना पड़ सकता है तथा रियल एस्टेट एजेंट को भी कानून तोड़ने का जिम्मेदार माना जा सकता है। इसलिए इस सौदे को रद्द कर दिया गया। 'यह पूरा अनुभव मेरे लिए बहुत अपमानजनक और थका देने वाला रहा। मैं वर्षों से इस देश में रह रही हूं और काम कर रही हूं। और एक करदाता के तौर पर मुझे कम से कम यहां एक घर खरीदने का अधिकार तो होना ही चाहिए', ली कहती है।

अमेरिका के तीन दर्जन से अधिक राज्यों ने चीनी नागरिकों को घर का मालिकाना हक देने के मामले में ऐसे ही कानून या तो बनाए हैं, या इस पर विचार कर रहे हैं। उनका तर्क है कि संवेदनशील जगहों के पास चीनी नागरिकों को घर का मालिकाना हक देना राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरा है। यह सख्ती इसलिए भी जरूरी है, क्योंकि संघीय सरकार कोशिशों के बावजूद अमेरिका में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का असर रोक पाने में विफल रही है। चीनी नागरिकों के अमेरिका में कृषि भूमि खरीदने पर तो रोक है ही, पर वे आवासीय संपत्ति खरीद सकते हैं, जिनके पास ग्रीन कार्ड हो। अनेक चीनी नागरिकों की शिकायत है कि अमेरिका में रहने का उनका सपना तोड़ा जा रहा है। उनका आरोप है कि अमेरिका में चीन-विरोधी भावनाएं मजबूत हो रही हैं। चीनी नागरिकों के खिलाफ लाए कानून को अदालत में चुनौती दी गई है, लेकिन यह तय नहीं है कि फैसला अमेरिका में रह रहे चीनियों के पक्ष में आएगा ही। -साथ में, पैट्रिशिया मजेई।

©The New York Times 2024

आंकड़े

आचार संहिता उल्लंघन

लोकसभा चुनाव के दौरान चुनाव आयोग ने देश भर में अब तक 8,889 करोड़ रुपये की नकदी व अवैध सामग्री जब्त की है।

राशि करोड़ रुपये में है। स्रोत: ECI

मारुति ने सूर्य को फल समझकर निगल लिया। तब इंद्रदेव ने वज्र का प्रहार कर सूर्यदेव को मुक्त कराया, लेकिन इससे पवनसुत की ठुड्डी टेढ़ी हो गई।

मारुति से बने हनुमान

अंतर्यात्रा
संकलित

पौराणिक कथाओं के अनुसार हनुमान जी के बचपन का नाम मारुति था। एक दिन मारुति नंदन अपनी नींद से उठे, तो उन्हें बहुत भूख लगी। उन्होंने पास के एक पेड़ पर लाल पका हुआ फल देखा, जिसे खाने के लिए वह निकल पड़े। मारुति जिसे फल समझ रहे थे, वह सूर्यदेव थे।

वह अमावस्या का दिन था और सूर्य को ग्रहण लगने वाला था। सूर्य को राहु ग्रहण कर पाता, उससे पहले हनुमान जी ने सूर्य को निगल लिया। राहु को समझ नहीं आ रहा था कि यह क्या हो रहा है? उसने इंद्र से सहायता मांगी। इंद्रदेव के बार-बार अनुरोध करने पर भी हनुमान जी ने सूर्यदेव को मुक्त नहीं किया, तो इंद्र ने उनके चेहरे पर वज्र से प्रहार किया, जिससे सूर्यदेव मुक्त हो गए। लेकिन वज्र के प्रहार से पवनपुत्र मूर्छित होकर गिर पड़े और उनकी ठुड्डी टेढ़ी हो गई। इस बारे में वायुदेव को पता चला, तो वह बहुत क्रोधित हुए। उन्होंने संपूर्ण संसार में वायु का प्रवाह रोक दिया, नतीजतन पूरे ब्रह्मांड के जीव-जंतुओं के जीवन पर संकट आ गया। इस विनाश को रोकने के लिए, सभी देवताओं ने पवनदेव से क्रोध त्यागने का अनुरोध किया। पवनदेव को प्रसन्न करने के लिए बालक मारुति को उनकी पूर्व स्थिति में लौटा दिया और कई वरदान भी दिए। देवताओं के आशीर्वाद से मारुति और भी शक्तिशाली हो गए, लेकिन वज्र के प्रभाव से उनकी ठुड्डी टेढ़ी हो गई, इसलिए उनका नाम हनुमान पड़ा।

अमर उजाला

पुराने पन्नों से — 29 अगस्त, 1952

मिस्र में ब्रिटेन के जासूस फैले हैं; मुस्तफा नहस का आरोप

मिस्र में ब्रिटेन के जासूस फैले हैं; मुस्तफा नहस का आरोप

पहाड़ी के लिये पांच परि तक लड़ाई

वफ्द पार्टी के नेता मुस्ताफ नहस ने कल ब्रिटिश साम्राज्यवाद पर आरोप लगाया कि मिस्र में जो कुछ भी उपद्रव हुए हैं, उसमें उसका खुला हाथ है। नहस ने कहा कि ब्रिटेन के जासूस व एजेंट देश भर में फैले हुए हैं।

पीओके की वापसी का वक्त आ गया है

पीओके पर पाकिस्तान ने जबरन अवैध कब्जा किया हुआ है। शोषण और बदहाली से तंग वहां के लोग खुद अब भारत में शामिल होना चाहते हैं।

कुलदीप तलवार — पड़ोस

पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर (पीओके) में पिछले कुछ दिनों से आटे की आसमान छूती कीमत और बिजली के बिल में अप्रत्याशित बढ़ोतरी के खिलाफ व्यापक प्रदर्शन जारी है। वहां की बदहाली का मुख्य कारण पीओके के साथ पाकिस्तान का सौतेला व्यवहार है। पाकिस्तान पीओके के संसाधनों की लगातार लूट में लगा है। इसी नीति के विरोध में यह प्रदर्शन उग्र रूप ले चुका है। लोगों का कहना है कि पीओके स्थित मंगला बांध से उत्पादित बिजली की पाकिस्तान में आपूर्ति की जाती है। हमें मिलने वाली सब्सिडी बंद कर बिजली के बिल में अप्रत्याशित बढ़ोतरी की गई है।

पीओके स्थित मंगला से बांध दो से ढाई हजार मेगावाट बिजली पैदा होती है। इसकी उत्पादन लागत दर ढाई से तीन रुपये प्रति यूनिट है और पाकिस्तान सरकार उपभोक्ताओं से 50 से 60 रुपये प्रति यूनिट वसूल करती है। इस आंदोलन का नेतृत्व जम्मू-

कश्मीर संयुक्त आवामी एक्शन कमेटी कर रही है। आंदोलन को कुचलने के लिए हजारों की संख्या में रेंजर्स तैनात किए गए हैं। इसमें दोनों तरफ से हुई झड़पों में आंदोलनकारी, रेंजर्स और पुलिस कर्मचारी मारे गए हैं। अब इस मुद्दे की गूंज ब्रिटेन और कई देशों में पहुंच गई है। ब्रिटेन में पाकिस्तान कश्मीर पीपुल्स पार्टी के कार्यकर्ताओं ने पाकिस्तान वाणिज्य दूतावास के बाहर प्रदर्शन शुरू कर दिया है। सूत्रों के अनुसार, अब मुजफ्फराबाद में हेलीकॉप्टरों के माध्यम से सेना के कमांडो की तैनाती की जा रही है, जिससे हिंसा और जान-माल के नुकसान की आशंका और ज्यादा बढ़ गई है। पीओके के हालात अब इतने बदहाल हो गए हैं कि वहां के लोग पाकिस्तानी हुकूमत के खिलाफ खुली बगावत पर उतर आए हैं। वे खुलेआम कह रहे हैं कि 'हम भारत में शामिल होना चाहते हैं, कम से कम हमें वहां दो वक्त की रोटी तो मिल जाएगी। यहां जीना दूभर हो गया है। यहां के प्राकृतिक संसाधनों को पाकिस्तान लूट रहा है। वह अपनी जरूरत की चीजें निकाल कर ले जाता है, लेकिन हमें कुछ नहीं मिलता।' गौरतलब है कि विगत 10 मई को वहां भारतीय तिरंगा लहराए गए। कई जगह पर 'हमें भारत से मिला दो' के नारे लिखे हुए पोस्टर भी लगाए गए। दरअसल पीओके के लोग देख रहे हैं कि जम्मू-कश्मीर के निवासी शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं। जम्मू-कश्मीर में खुशहाली और विकास की नई लहर चल पड़ी है। हाल ही में हुए संसदीय चुनाव में जम्मू-कश्मीर में 38 फीसदी का रिकॉर्ड मतदान हुआ, जो पहले हुए मतदानों से काफी ज्यादा है।

पाकिस्तान की सरकार ने पीओके को 23 अरब पाक रुपये का अनुदान दिया है, लेकिन इसका कोई असर नहीं हुआ। हकीकत तो यह है कि पीओके के लोग पाकिस्तान के प्रधानमंत्री शहबाज शरीफ पर अब बिल्कुल भी भरोसा नहीं करते। इसलिए अब पाकिस्तान के प्रधानमंत्री पीओके जाकर बातचीत के जरिये वहां की समस्याओं का हल निकालना चाहते हैं। अब देखना होगा कि उनकी बातचीत क्या रंग लाएगी। देखा जाए, तो 1947 के बाद भारत की किसी भी सरकार ने पीओके को पाकिस्तान के कब्जे से छुड़ाने की कोई कोशिश नहीं की। लेकिन हमारी मौजूदा मोदी सरकार के रक्षा मंत्री, गृह मंत्री और विदेश मंत्री ने पीओके के संजीदा हालात को देखते हुए कहा है कि पीओके भारत का हिस्सा है और हम इसे हर हाल में पाकिस्तान के चंगुल से निकाल कर रहेंगे।

उम्मीद की जानी चाहिए कि भारत इसे वापस लेने के लिए ठोस कदम उठाएगा, ताकि इसके दूसरे हिस्से को जम्मू-कश्मीर के साथ मिलाया जा सके। अनुच्छेद 370 को हटाने के बाद जम्मू-कश्मीर के हालात काफी बेहतर हुए हैं। इससे पहले संसद में दो प्रस्ताव भी पास हो चुके हैं। अब पाकिस्तान से हिसाब लेने का समय आ गया है। पीओके में पाकिस्तान की खुफिया एजेंसी आईएसआई वहां के युवाओं को हथियार और प्रशिक्षण देकर भारत के खिलाफ भड़काती है और जम्मू-कश्मीर में घुसपैठ करा रही है। पीओके में आतंकियों के प्रशिक्षण शिविर भी बने हुए हैं। अगर पीओके को कब्जे से छुड़ा लिया गया, तो ये शिविर बंद हो जाएंगे। उम्मीद करनी चाहिए कि आगामी चार जून को लोकसभा चुनाव के नतीजे आने के बाद जब नई सरकार का गठन हो जाएगा, तो इसके तुरंत बाद सरकार अपने एजेंडे में पीओके की वापसी को प्राथमिकता में रखेगा।

बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 17 अंक 80

उत्साहजनक संकेत

वित्त वर्ष 24 की चौथी तिमाही (जनवरी-मार्च 2024) के कंपनियों के नतीजों से संकेत मिलते हैं कि कॉरपोरेट जगत की वृद्धि में सुधार, मार्जिन में कुछ बढ़त के साथ जारी है। हालांकि, बैंक और वित्तीय जगत की कंपनियों का समूचे लाभ में बड़ा हिस्सा है, और ऊर्जा क्षेत्र में प्रभुत्व रखने वाले सार्वजनिक क्षेत्र के कई बड़े उद्यमों ने अभी तक अपने नतीजे घोषित नहीं किए हैं। इसलिए कुछ प्रमुख क्षेत्रों का रुझान अभी शायद उतना स्पष्ट नहीं है।

कुल मिलाकर देखें तो वित्त वर्ष 24 की चौथी तिमाही में कम से कम 1 करोड़ बिक्री वाली 1,040 सूचीबद्ध कंपनियों ने अपने नतीजे घोषित किए हैं। उन्होंने शुद्ध बिक्री में 10 फीसदी की बढ़त, एबिट्डा (ब्याज, कर, मूल्यह्रास और परिशोधन से पहले की आय) में 21 फीसदी की वृद्धि और कर बाद मुनाफे यानी पीएटी में 18 फीसदी की वृद्धि दर्ज की है। बैंकों, अन्य वित्तीय कंपनियों और तेल कंपनियों जैसे अस्थिर क्षेत्रों के अलावा बाकी सभी कंपनियों ने बिक्री में 7.8 फीसदी, एबिट्डा में 13 फीसदी और पीएटी में 17.7 फीसदी की बढ़त दर्ज की है। गौर करने की बात यह है कि बैंकों ने ब्याज आय में 24.5 फीसदी और पीएटी में 46 फीसदी की वृद्धि हासिल की है।

कई तिमाहियों तक अर्थव्यवस्था सरकारी व्यय से संचालित हो रही है, जबकि इस दौरान खपत की मांग कम रही। अभी यह स्पष्ट नहीं है कि इस हालत में बदलाव आ रहा है या नहीं। अगर बड़े उपभोग को देखें तो वाहन क्षेत्र में वास्तव में ऊंची मांग देखी जा रही है, इसमें इकाई मात्रा के आधार पर बिक्री बेहतर हुई है और औसत बिक्री कीमत में भी सुधार हो रहा है। वाहन क्षेत्र में चौथी तिमाही में यह देखा गया कि मारुति के साथ ही हीरो, बजाज ऑटो और टीवीएस जैसी दोपहिया दिग्गज कंपनियों ने भी मजबूत प्रदर्शन किया है। दोपहिया वाहन क्षेत्र और मारुति में मात्रा के आधार पर अच्छी बिक्री को आमतौर पर उपभोग संबंधी मांग का अच्छा संकेत कहा जाएगा। हालांकि टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं (एफएमसीजी) के क्षेत्र का प्रदर्शन भी खपत मांग का व्यापक संकेत माना जाता है, और वहां के नतीजे बहुत प्रभावशाली नहीं हैं। इस समूचे क्षेत्र की बिक्री में 7 फीसदी का इजाफा हुआ है, लेकिन गोदरेज कंज्यूमर की वजह से लाभप्रदता पर विपरीत असर रहा, जिसने मुद्रा संकट की वजह से विदेशी कामकाज में बड़ी क्षति देखी है। अगर इसे समायोजित कर लें तो एबिट्डा में 12 फीसदी और पीएटी में 13 फीसदी की बढ़त दिखती है।

हालांकि ज्यादातर कंपनियों ने कम मात्रात्मक वृद्धि दर्ज की है और कीमतों में बढ़त की वजह से उनके नतीजे बेहतर दिख रहे हैं। आईटी और फार्मा, दो ऐसे क्षेत्र हैं जिन्हें निर्यात का अग्रदूत माना जाता है। आईटी कंपनियों ने सतर्क अनुमान जारी किए हैं जैसा कि उन्होंने पिछली पांच तिमाहियों में किया था। स्थिर मुद्रा के आधार पर उनकी बिक्री में 3 फीसदी, एबिट्डा में 8 फीसदी और पीएटी में 9 फीसदी की बढ़त हुई है। कर्मचारियों की संख्या में कटौती जारी है। फार्मा क्षेत्र ने इससे काफी बेहतर प्रदर्शन किया है। स्थिर मुद्रा के आधार पर उनकी बिक्री में 8 फीसदी, एबिट्डा में 34 फीसदी और पीएटी में 50 फीसदी का इजाफा हुआ है। चीन के वुहान प्रांत (जो कि दवाओं के उत्पादन का एक प्रमुख केंद्र है) पर हुए कोविड के असर की वजह से कच्चे माल और आपूर्ति श्रृंखला से जुड़ी चिंता काफी हद तक दूर हो गई है। बुनियादी ढांचा विकास पर जोर देने की नीति का यह मतलब है कि निर्माण कंपनियों की तरफ से सीमेंट व स्टील जैसी निर्माण सामग्री की अच्छी मांग है। हालांकि, आम चुनावों की वजह से सरकारी निविदाओं में कमी आई है जिसका असर वित्त वर्ष 25 की पहली तिमाही में दिखेगा। उदाहरण के लिए इस्पात उद्योग में कम लाभ और एबिट्डा के साथ बिक्री सपाट रही है, क्योंकि वैश्विक स्तर पर इस्पात की कीमतों में गिरावट आई है।

इसलिए वित्त वर्ष 24 की चौथी तिमाही के नतीजे थोड़े उत्साहजनक हैं। इनसे यह संकेत मिलता है कि आर्थिक वृद्धि जारी रहेगी और खपत की मांग में सुधार हो सकता है। लेकिन नरम वैश्विक अर्थव्यवस्था चिंता की एक वजह है क्योंकि इससे सॉफ्टवेयर सेवाओं, इस्पात जैसे कच्चे माल और अन्य उद्योगों की मांग प्रभावित हो रही है। यही नहीं, हर क्षेत्र में ब्याज की लागत बढ़ गई है- नमूने में शामिल समूचे उद्योग ने ब्याज लागत में 30 फीसदी की बढ़त की जानकारी दी है और इससे ऐसे उद्योगों की लाभप्रदता भी प्रभावित हो रही है जहां अन्य कच्चे माल की कीमतों में नरमी आई है।

कांग्रेस के लिए अहम है अबकी बार 90 पार

भाजपा को अगर 30 सीट ज्यादा मिल जाती हैं तो भी उसकी ताकत और सरकार की गुणवत्ता पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा। मगर उसे 30 सीट कम मिलती हैं तो इसके कई अहम परिणाम होंगे।

राष्ट्र की बात
शेखर गुप्ता

तेलंगाना के मुख्यमंत्री रेवंत रेड्डी ने देश में हो रहे आम चुनावों को लेकर एक अलग संकेत दिया है। उन्होंने भारतीय जनता पार्टी की संभावित सीट की बात करने के बजाय कांग्रेस पार्टी को मिलने वाली सीट पर ध्यान केंद्रित किया है।

द प्रिंट को दिए एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा कि उनकी पार्टी को अगली सरकार बनाने के लिए केवल 125 सीट की आवश्यकता है जबकि भाजपा को कम से कम 250 सीट की जरूरत होगी। मुझे पता है कि आपमें से कई पाठक यह पढ़कर भड़क गए होंगे। आखिर उन्हें इतनी सीट कहां से मिलेंगी? यह किस तरह की कल्पना है? यह आलेख मैं लिखता हूं चैटजीपीटी नहीं, इसलिए आगे आपको कुछ कठिन बातें मिल सकती हैं। हम कभी किसी चुनाव का पूर्वानुमान नहीं लगाते। सीट का अनुमान तो भूल ही जाइए।

रेड्डी की दलील है कि कांग्रेस के पास अब गठबंधन और उसका भरोसा है। भाजपा के पास दोनों नहीं हैं। हम यह बात भी शामिल कर सकते हैं कि इतिहास हमें बताता है कि 150 से कम सीट वाली पार्टी भी गठबंधन का नेतृत्व कर सकती है।

कांग्रेस को 2004 में भाजपा की 138 सीट के मुकाबले 145 मिली थीं और संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की पहली सरकार बनी थी क्योंकि ज्यादा साझेदार कांग्रेस के साथ थे। एक बार फिर यह प्रश्न पूछना बनता है कि कांग्रेस में कोई नेता 125 सीट जीतने के बारे में सोच भी कैसे रहा है? आज के इस प्रश्न पर पारंपरिक तरीके से अलग हटकर भी विचार किया जा सकता है।

मतगणना को तीन सप्ताह से भी कम समय बचा है और सबकी जुबान पर यही सवाल है कि आखिर कितनी सीट मिलेंगी? यहां भाजपा की सीट की बात की जा रही है। क्या उसे 370 सीट मिलेंगी। नरेंद्र मोदी ने शुरुआत में यही लक्ष्य तय किया था और साझेदारों की 30 सीट के साथ मिलकर आंकड़ा 400 पार हो जाएगा। क्या यह आंकड़ा पिछले आम चुनाव के 303 के आंकड़े से 20-30 सीट कम या ज्यादा रहेगा? क्या पार्टी 272 के आंकड़े से नीचे रह जाएगी? यह वैसा ही है जैसे आपको पता हो कि क्रिकेट मैच कौन जीतेगा और आप केवल यह चर्चा कर रहे हों कि कितने रन या विकेट से जीत होगी।

अगर हम इस बहस को उलट दें और यह चर्चा करें कि हारने वाले का प्रदर्शन कैसा रहेगा तो? यह बात कांग्रेस और मोदी के आलोचकों को भड़काएगी। हम कांग्रेस को शीर्ष पर आते नहीं देख रहे हैं क्योंकि वह केवल 328 सीट पर लड़ रही है जो इतिहास में अब तक का सबसे कम आंकड़ा है।

कांग्रेस को 2014 और 2019 में क्रमशः 44 और 52 सीट पर जीत मिली थी जबकि भाजपा को 282 और 303 सीट मिली थीं। राज्य दर राज्य चुनावी लड़ाई को देखते हुए हम कह सकते हैं कि अगर भाजपा को 303 का अपना आंकड़ा बढ़ाना है तो इनमें से अधिकांश सीटें गैर कांग्रेस दलों-राकांपा, शिव सेना, आप, तृणमूल कांग्रेस, भारत राष्ट्र समिति, बीजू जनता दल और यहां तक कि द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम तथा आंध्र में वाईएसआरसीपी से आनी होंगी। कांग्रेस के विरुद्ध पार्टी पहले ही अधिकतम सीट पर है। 2019 में जिन सीट पर दोनों दल आमने-सामने थे उनमें से 92 फीसदी पर भाजपा को जीत हासिल हुई थी। ऐसे में कांग्रेस के पास खोने को कुछ नहीं है।

अब समीकरण को उलट दें और यह सोचें कि कांग्रेस किन सीट पर जीत हासिल कर सकती है। उत्तर में हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, झारखंड तथा पश्चिम और दक्षिण में गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा और कर्नाटक में कांग्रेस ने लगभग सभी सीटें भाजपा के हाथों गंवा दीं। इन राज्यों की 241 सीट में से कांग्रेस को केवल नौ सीट पर जीत हासिल हुई। अब पार्टी के पास खोने को कुछ नहीं है। पार्टी को ज्यादातर जीत उन जगहों पर मिली जहां भाजपा उसकी प्रतिद्वंद्वी नहीं थी। उदाहरण के लिए केरल और तमिलनाडु।

कांग्रेस अब जिन 328 सीट पर चुनाव लड़ रही है वहां उसकी प्रमुख प्रतिद्वंद्वी भाजपा है। इसका अर्थ यह है कि मोदी और भाजपा के अश्वमेध को रोकने की जिम्मेदारी भी उसी के कंधे पर है। वह यहां जो भी सीट जीतेगी, वह भाजपा को सीधा नुकसान होगा। जब 90 सीट ही पर्याप्त हैं तो उसे 125 सीट की जरूरत नहीं है। आइए समझते हैं।

अगर कांग्रेस 80 सीट पाती है तो भाजपा की सीट 2019 की तुलना में 25-30 तक कम हो जाएंगी। निश्चित रूप से भाजपा और उसके समर्थक कहेंगे कि उसे ओडिशा, पश्चिम बंगाल, तेलंगाना और आंध्र प्रदेश में लाभ होगा और वह वहां गैर कांग्रेसी दलों से सीटें छीनेगी। उनकी बात सही भी हो सकती है। इसके उलट उद्धव ठाकरे, शरद पवार और तेजस्वी यादव के दलों के विरुद्ध भाजपा दबाव में हैं। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि अगर कांग्रेस को 52 से 10 सीट अधिक मिलीं तो भाजपा की 10 सीट कम होंगी। अगर कांग्रेस 90 पर पहुंचती है तो काफी संभव है कि भाजपा 272 क आंकड़े से नीचे रह जाए। सौ सीट राष्ट्रीय राजनीति में हलचल मचा देंगी।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि ऐसा होगा या हो सकता है। मैं बस एक बुनियादी समीकरण पेश कर रहा हूं कि हारने वालों को सरकार बनाने के लिए जीतने वालों से कम की जरूरत है। इसे दूसरी तरह से देखते हैं। भाजपा को अगर 30 और सीट मिलती हैं और वह 330 पर पहुंच जाती है तो इससे अगली सरकार की मजबूती पर कोई असर नहीं होगा। जबकि 30 सीट की कमी उसके लिए गंभीर परिणाम लाएगी।

कांग्रेस को 70 के ऊपर मिलने वाली हर सीट राष्ट्रीय राजनीति को दोबारा संतुलित करेगी। पार्टी चाहे जो भी दावा करे लेकिन ऐसा करना आसान नहीं होगा। खासतौर पर इसलिए कि इनमें से अधिकांश में उसे भाजपा को हराना होगा या कहें तो मोदी को हराना होगा। 2019 में दोनों दलों को मिले वोटों के अंतर को ध्यान में रखें तो यह काम आसान नहीं होगा।

कांग्रेस अतिरिक्त 30 सीट कहां से लाएगी? क्योंकि अगर उसे हालात बदलने हैं तो कम से कम इतनी सीट की जरूरत होगी। पार्टी उन राज्यों पर नजर डालेगी जहां वह 2019 में भाजपा के हाथों ज्यादातर सीट गंवा चुकी है और अब वहां या तो वह गठबंधन कर चुकी है या उसकी राज्य सरकार हैं। कर्नाटक और तेलंगाना सबसे पहले आते हैं जहां पार्टी के पास 28 और 17 में से क्रमशः एक और तीन सीट ही हैं।

उसके बाद महाराष्ट्र क्योंकि भाजपा का गठबंधन टूटा हुआ है और कांग्रेस को ठाकरे शिव सेना के रूप में नया साझेदार मिल चुका है। अब हम हिंदी राज्यों पर आते हैं। बिहार में भाजपा का साझेदार कमजोर है जबकि कांग्रेस के साथ तेजस्वी हैं। झारखंड में भी साझेदार महत्त्वपूर्ण हैं।

मध्य प्रदेश और राजस्थान पर कांग्रेस के दावों पर गौर करते हुए हरियाणा, दिल्ली, चंडीगढ़ और हिमाचल प्रदेश की बात करें तो इन राज्यों की 22 में से कांग्रेस के पास केवल एक सीट है। भाजपा को यहां एक को छोड़कर सभी सीट पर 50 फीसदी से अधिक मत मिले। कांग्रेस और आप के बीच गठबंधन हो चुका है। क्या यह गठबंधन और पुलवामा-बालाकोट जैसे जोश की कमी कुछ सीट पर असर डालेगी? खासकर हरियाणा में?

अगर आप इस सूची पर दोबारा नजर डालें तो 30 सीट का इजाफा या उससे कुछ अधिक सीटें असंभव नहीं हैं। याद रहे कि मैंने इसके लिए संभावित शब्द का प्रयोग नहीं किया। जितना मैं जानता हूं, कांग्रेस 52 से कम सीट पर भी सिमट सकती है। भाजपा के बजाय कांग्रेस की सीट के बारे में अनुमान लगाना अधिक दिलचस्प है।

कम होते दर्शकों के बीच बढ़ती सामग्री

मीडिया मंत्र
वनिता कोहली-खांडेकर

देसी अगाथा क्रिस्टी के नाम से मशहूर, मंजरी प्रभु का कहना है, 'हमें अधिक लेखकों की नहीं बल्कि अधिक पाठकों की आवश्यकता है।' मंजरी इस साल की शुरुआत में पुणे में एक किताब के लोकार्पण समारोह में बोल रही थीं। उन्होंने 21 किताबें लिखी हैं और वह लघु फिल्मों की फिल्मकार, टीवी निर्माता भी हैं। वह इस आयोजन में पुणे अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक महोत्सव की संस्थापक/निदेशक के रूप में संवाद कर रही थीं। उनका पूरा संघर्ष यह है कि लेखक बनने की इच्छा न रखने वाले लोगों को लेखकों की बात सुनने के लिए लाया जाए।

मंजरी ने अनजाने में ही सही तेजी से डिजिटलीकृत हो रही दुनिया में मीडिया और मनोरंजन तंत्र के सामने आने वाली एक सबसे बड़ी चुनौती का जिक्र किया है। अब यह आलम है कि मनोरंजन कराने वाले और मनोरंजन करने वाले, सूचना देने वाले और सूचना पाने वाले, लेखक और पाठक, श्रोता और संगीतकार के बीच की सीमाएं समाप्त हो रही हैं। इन दिनों सोशल मीडिया और वीडियो के माध्यम से मीडिया के सितारों या विशेषज्ञ लोगों से बात करने, उन्हें महसूस करने की क्षमता के चलते लोग, अब केवल दर्शक बनकर नहीं रहना चाहते हैं बल्कि वे क्रिएटर बनना चाहते हैं।

पहले इंटरनेट और फिर सोशल मीडिया के उभार ने जिस तरह की लोकतांत्रिक व्यवस्था कायम की उससे कई तरह के बदलावों को गति मिली। वर्ष 1995 में जब इंटरनेट की शुरुआत हुई या 1990 के दशक के अंत में गूगल सर्च या 2005 में यूट्यूब के साथ स्ट्रीमिंग वीडियो आया तब ये बातें इतनी स्पष्ट और आम नहीं थीं।

यहां तक कि जब सोशल मीडिया जैसे कि फेसबुक (2004) और ट्विटर (2006 में अब एक्स) ने दस्तक दी थी तब भी चीजें इतनी स्पष्ट नहीं थीं। इसका सार यह है कि अब यह वैश्विक मीडिया अर्थव्यवस्था के कारोबारी और रचनात्मक दोनों हिस्सों को प्रभावित कर रहा है। इन सभी बदलावों में से दो बड़े बदलाव अब स्पष्ट रूप से दिख रहे हैं।

पहला कलाकारों और दर्शकों को अलग करने वाली सभी बाधाओं को खत्म करना है। जब भी कोई फिल्म रिलीज होती है या कोई शो आता है तब एक्स या इंस्टाग्राम पर आपको जबरदस्त तरीके से मीम, कमेंट, समीक्षाएं देखने को मिलती हैं। अधिकांशतः आम लोग यह बताने में बहुत खुशी महसूस करते हैं कि उन्हें किसी किताब, नाटक या कलाकृति में क्या चीज अच्छी लगी। आप सोच सकते हैं कि बड़ी तादाद में दी जा रही ऐसी राय के बीच पेशेवर फिल्म समीक्षक कहां होंगे। क्या अब उनकी कोई भूमिका है? लेकिन जो लोग प्रतिक्रिया देते हैं उनमें से कई को यह भी उम्मीद है कि लोग उनकी प्रतिभा स्वीकार करें। कई अन्य लोग अपनी प्रतिभा या कौशल से जुड़ा एक वीडियो बनाते हैं और दर्शकों को खोजने की उम्मीद में इसे अपलोड करते हैं।

यही दूसरा बदलाव है। इसने साइबरस्पेस को एक खुला, वैश्विक, ऑडिशन थिएटर बना दिया है जहां जिसका जो मन करे वो दिखा सकता है। आप यहां यह भी बता सकते हैं कि आपकी बिल्ली कैसे सोती है या आपकी मां कैसे नाचती हैं। इसने कई प्रतिभाशाली लोगों को एक रास्ता दिया है जो विज्ञापन, स्ट्रीमिंग शो, छोटे वीडियो, संगीत या फिल्मों की दुनिया में आ जाते हैं।

दुनिया की सबसे बड़ी स्ट्रीमिंग सेवा, यूट्यूब पर लगभग 6.2 करोड़ क्रिएटर और 2.5 अरब दर्शक हैं। इस ब्रांड ने 2023 में विज्ञापन राजस्व से 31.5 अरब डॉलर कमाए हैं। इसका एक बड़ा हिस्सा पेशेवर वीडियो से नहीं बल्कि उपयोगकर्ता द्वारा बनाए गए वीडियो से आया है। इसमें कोई हैरानी की बात नहीं है कि यूट्यूब क्रिएटर तंत्र को बड़ी सावधानी से बढ़ावा देता है। क्रिएटर के लिए कई वेबसाइटें हैं और आर्टिफिशल इंटेलिजेंस (एआई) टूल्स का इस्तेमाल वीडियो बनाने, अपलोड करने और उससे कमाई को आसान बनाने के लिए किया जा रहा है। यूट्यूब किसी वीडियो को मिलने वाली विज्ञापन राशि का लगभग आधा हिस्सा क्रिएटर के साथ साझा करता है।

आप दर्जनों ऐसे लोगों को यूट्यूब फैन फेस्ट और सम्मेलनों में बोलते हुए देखते हैं। ये वे लोग हैं जिन्हें ब्रांड, राजनीतिक दल और कभी-कभी फिल्म निर्माता भी ढूंढते हैं। इसी वजह से अब क्रिएटर शब्द, मशहूर हस्ती होने का पर्याय बन गया है। हालांकि तथ्य यह है कि केवल कुछ ही क्रिएटर जैसे कि भुवन बाम, जाकिर खान या रचना फाडके रानडे उस मुकाम तक पहुंच पाती हैं। यह किसी भी रचनात्मक क्षेत्र के विपरीत रुझान नहीं है जहां अभिनेताओं, लेखकों, संगीतकारों, कलाकारों या गीतकारों का एक छोटा हिस्सा ही लंबे समय में हिट हो पाता है। रचनात्मक कारोबार की प्रकृति ऐसी ही होती है और केवल सर्वश्रेष्ठ में से सर्वश्रेष्ठ ही शीर्ष पर पहुंचते हैं। दरअसल बाजार जितना अधिक प्रतिस्पर्धी और वैश्विक स्तर के लायक होगा, सफलता पाना उतना ही कठिन होता जाएगा।

इसे इस तरह इसे देखा जा सकता है कि भारत में एक वर्ष में 1,700-1,900 फिल्में बनती हैं। इनमें से केवल एक-तिहाई ही पैसा कमा पाती हैं या फिर नफा-न नुकसान के स्तर पर पहुंचती हैं। इसमें वे सभी कारक मसलन सिनेमाघरों, स्ट्रीमिंग अधिकारों आदि से होने वाली सभी संभावित आय शामिल है। बाकी फिल्में फ्लॉप हो जाती हैं।

यही बात प्रतिभाशाली लोगों के मामले में भी सच है। यह एक पिरामिड है और केवल असाधारण प्रतिभा, कड़ी मेहनत (और कुछ किस्मत) ही आपको शीर्ष पर ले जा सकता है। अधिकांश लोग बीच में ही रह जाते हैं और एक बड़ा हिस्सा नीचे रहता है।

मिसाल के तौर पर म्यूजिक स्ट्रीमिंग को ही लें। मार्च 2024 में अमेरिका के बिजनेस पब्लिकेशन, फास्ट कंपनी के लिए लिखे गए एक लेख में, मीडिया लेखिका जूलिया सेलिंगर ने भी इनके ही संदर्भ में बताया है। उनका कहना है कि औसतन, संगीतकारों को प्रति स्ट्रीम (हर बार जब कोई गाना सुनता है) 0.003 डॉलर और 0.005 डॉलर के बीच रॉयल्टी मिलती है।

इसका मतलब है कि 15 डॉलर प्रति घंटे के काम के लिए प्रति माह 800,000 से अधिक स्ट्रीम की आवश्यकता होगी।

क्रिएटर के लिए उचित भुगतान सुनिश्चित करने के लिए मिशिगन प्रतिनिधि राशिदा तलैब, न्यूयॉर्क के प्रतिनिधि जमाल बूमैन के साथ यूनाइटेड म्यूजिशियन्स ऐंड अलाइड वर्कर्स ने लिविंग वेज फॉर म्यूजिशियन्स एक्ट की पेशकश की है। इसके लिए स्ट्रीमर्स को एक अलग फंड बनाने की आवश्यकता होगी जो कलाकारों को हर बार किसी ट्रैक की स्ट्रीमिंग के लिए न्यूनतम कुछ रकम का भुगतान करेंगे।

दुनिया भर में मनोरंजन का बाजार बहुत ही जटिल है, इसके बावजूद क्रिएटर के लिए न्यूनतम वेतन की मांग की जा रही है। यह उन लोगों को हतोत्साहित करने के लिए नहीं है, जो गाना, नाचना, लिखने के अलावा छोटे मजेदार वीडियो बनाना चाहते हैं।

हर किसी को अपनी पसंद की चीजें अपनानी चाहिए। लेकिन सच्चाई यह है कि हम आजकल फिल्में, किताबें, मैगजीन, संगीत और वीडियो आदि की अधिकता में डूबे हुए हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि मनोरंजन की दुनिया में ज्यादा सामग्री की समस्या है। यही कारण है कि कुछ बड़ी स्ट्रीमिंग सेवाओं ने पिछले साल बजट में कटौती की थी। फिर भी, हर दिन लाखों लोग फिल्मों, शॉर्ट्स, संगीत, पॉडकास्ट आदि के इस जाल में शामिल हो जाते हैं। इसे इस तरह समझें, अगर पार्टी में सभी लोग एक साथ बात करना शुरू कर दें, तो कौन सुनेगा? यानी अगर दुनिया में हर कोई क्रिएटर बन गया तब दर्शक कौन होंगे?

आपका पक्ष

विदेशी कॉलेजों से छात्रों की शैक्षिक प्रगति होगी आसान

एक तरफ भारत विदेश में भारतीय शिक्षा के लिए संभावनाएं तलाश रहा है, दुनिया भी भारत में उच्च शिक्षा की अपार संभावनाओं का जायजा ले रही है। न्यूयॉर्क के कोलंबिया विश्वविद्यालय ने इस माह के अंत तक मुंबई में अंतरराष्ट्रीय अनुसंधान और क्षेत्रीय सहयोग केंद्र शुरू करने की घोषणा की है। ग्रैजुएट मैनेजमेंट एडमिशन काउंसिल (जीएमएसी) भी भारत में कार्यालय खोलने की योजना पर काम कर रही है। जीएमएसी ग्रैजुएट मैनेजमेंट एप्टीट्यूट टेस्ट (जीएमएटी) कराती है। वर्ष 2009 में जीएमएटी में दुनिया भर के 2.65 लाख छात्र शामिल हुए थे। इनमें से 8 प्रतिशत भारत के थे। भारत में इस परीक्षा में शामिल होने वालों की संख्या लगातार बढ़ रही है। कोलंबिया विश्वविद्यालय की आरंभिक योजना मुंबई में कोलंबिया अर्थ इंस्टीट्यूट के साथ वैज्ञानिकों, अर्थशास्त्रियों,

न्यूयॉर्क के कोलंबिया विश्वविद्यालय ने मुंबई में अंतरराष्ट्रीय अनुसंधान और क्षेत्रीय सहयोग केंद्र शुरू करने की घोषणा की है

योजनाकारों और समाज विकास कार्यकर्ताओं के साथ काम करने की है। विश्वविद्यालय का ग्रामीण विकास और स्थापत्य कला पर ध्यान केंद्रित है। जाहिर है कि भारत ने विदेशी विश्वविद्यालयों का ध्यान अपनी ओर खींचा है और इस कारण भारतीय छात्रों की भविष्य की शैक्षिक प्रगति आसान हो सकेगी, साथ ही करियर की भी नई संभावनाएं बनेंगी।

सुधीर कुमार सोमानी देवास

नई सरकार की भू-राजनीतिक चुनौतियां

लेख 'नई सरकार के सामने भू-राजनीतिक चुनौतियां' वर्तमान वैश्विक परिस्थितियों पर बहुत गंभीर एवं गहन चर्चा करता है। नए वैश्विक परिदृश्य में अमेरिकी राष्ट्रपति के चुनाव को लेकर अनिश्चितताएं भी हैं और नए अमेरिकी राष्ट्रपति भी रूस-यूक्रेन युद्ध, पश्चिम एशिया और इजरायल-हमास युद्ध, लाल सागर में ईरान समर्थित हूती विद्रोहियों के आतंक पर दीर्घकालिक प्रभाव डाल सकते हैं। चीन कई वर्षों से भारत के साथ शत्रुतापूर्ण व्यवहार करता रहा है और अरुणाचल प्रदेश के भाग पर दावा करता रहा है। हिंद महासागर में चीन की वर्चस्ववादी नीतियां, मालदीव में बढ़ता प्रभाव भी भारत सरकार के लिए चुनौतीपूर्ण है। चाबहार पोर्ट की ईरान की परियोजना में भारत का निवेश भले ही अमेरिका को खटक रहा हो और प्रतिबंध का खतरा दिखाई दे रहा हो, परंतु ईरान से भारत का सहयोग चीन का प्रभाव रोकने के साथ अमेरिका के भी हित में है, यह अमेरिका को समझाना होगा। एशिया में भारत की स्थिति बहुत मजबूत है और वह विभिन्न अंतरराष्ट्रीय समीकरणों के संतुलन का कारक है। भारत ईरान सहयोग दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य में दोनों के लिए हितकारी है और इस्लामिक देशों में भारत की स्थिति को सुदृढ़ करता है। पाकिस्तान कई दशकों से अस्थिर है या 1947 से ही अस्थिर है और अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा है। आज पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर और बलूचिस्तान पाकिस्तान से अपनी आजादी के लिए संघर्ष कर रहे हैं। भू राजनीतिक चुनौतियों का सामना करने के लिए सबसे अधिक आवश्यकता सुदृढ़ सैन्य शक्ति, अंतरिक्ष महाशक्ति और परमाणु शक्ति के रूप में स्थापित होने की है।

विनोद जौहरी, दिल्ली

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिज़नेस स्टैंडर्ड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in
पत्र/ईमेल में अपना डाक पता और टेलीफोन नंबर अवश्य लिखें।

देश-दुनिया

फोटो - पीटीआई

मौसम विज्ञान विभाग के अनुसार राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में रविवार को अधिकतम तापमान 46 डिग्री सेल्सियस रहा। इंडिया गेट पर देश के विभिन्न राज्यों से आए पर्यटक कड़ी धूप और गर्मी से बचने के लिए पेड़ की छांव में चलते नजर आए।

हिन्दुस्तान
1936
सत्य · सार्थक · सदैव

टीके का दुष्प्रभाव

कोवैक्सीन पर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के शोध पर चर्चा आसानी से शांत नहीं होने वाली है। वास्तव में दुनिया के अनेक इलाकों में कोरोना वैक्सीन के दुष्प्रभावों की जांच-पड़ताल चल रही है। दुष्प्रभावों की चर्चा करने से पहले यह जान लेना जरूरी है कि वैक्सीन ने अधिकतम कारगरता के साथ कार्य किया है, जिससे बड़ी संख्या में लोगों की जान बची है, पर यह भी खास पहलू है कि किसी भी दवा के दुष्प्रभाव लोगों का ध्यान ज्यादा खींचते हैं। वैसे जब वैक्सीन का आगमन हुआ था, तब भी यह स्पष्ट था कि इसके दुष्प्रभाव या साइड इफेक्ट हो सकते हैं। कोई भी टीका इतनी जल्दी नहीं बनता है, पर कोरोना महामारी ऐसी बड़ी आपदा थी कि आनन-फानन में टीकों का आविष्कार हुआ, उन्हें सतर्कता के साथ मंजूरी मिली। एक समय था, जब दुनिया में एक बड़ी आबादी टीके मांग रही थी और आज टीकों के दुष्प्रभाव जानने को उत्सुक है। इसी कड़ी में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय (बीएचयू) के शोधकर्ताओं ने अपने एक साल के अध्ययन में पाया है कि टीका लेने वाले एक तिहाई लोगों को कुछ न कुछ समस्याएं हुई हैं। अब *स्प्रिंगर नेचर* जर्नल में प्रकाशित इस अध्ययन की चर्चा विश्व स्तर पर हो रही है, तो स्वाभाविक है।

ध्यान रहे, कोवैक्सीन की निर्माता भारत बायोटेक ने शोध को अपर्याप्त बताया है। वैसे ध्यान देने की बात है कि शोध में 926 लोग शामिल रहे हैं, क्या इतनी संख्या पर्याप्त है? क्या ज्यादा बड़े पैमाने पर शोध संभव है? क्या हमारे शिक्षा या शोध संस्थानों के पास इतने संसाधन हैं कि वे बड़े पैमाने पर शोध कर सकें? बेशक, ऐसे शोध के लिए योग्यता के साथ ही साहस की जरूरत होती है और बीएचयू ने यह साहस दिखाकर प्रशंसनीय कार्य किया है। बीएचयू से देश के दूसरे विश्वविद्यालयों को प्रेरणा लेनी चाहिए, इस प्रकार के न जाने कितने हजार कारगर व चर्चित शोधों की इस देश को जरूरत है। ऐसे शोध भारतीय शिक्षा संस्थानों की उपयोगिता में चार चांद लगा सकते हैं। खैर, आज के समय में सबसे बड़ी चिंता यह है कि वैक्सीन की वजह से स्ट्रोक की समस्या बढ़ी है, वैक्सीन ने हृदय को मुश्किल में डाल दिया है। बीएचयू के शोध में लगभग एक प्रतिशत लोगों ने स्ट्रोक और गुइलेन-बैरी सिंड्रोम सहित गंभीर दुष्प्रभावों की सूचना दी थी। टीका लेने के बाद किशोरों में त्वचा विकार, सामान्य विकार और तंत्रिका तंत्र विकार आम पाए गए हैं। गुइलेन-बैरी सिंड्रोम एक ऑटोइम्यून विकार है, जो हाथ और पैरों की नसों में कमजोरी का कारण बनता है। इस दिशा में ज्यादा पड़ताल जरूरी है।

बीएचयू के शोधकर्ताओं ने पाया है कि टीका लेने वाले करीब एक तिहाई लोगों को कुछ न कुछ समस्याएं हुई हैं। इस पर आगे अध्ययन जरूरी है।

कुल 635 किशोरों और 291 वयस्कों पर हुए शोध में सामने आई शिकायतें महत्वपूर्ण हैं, जिन पर आगे और अध्ययन होना चाहिए। मोटे तौर किशोरों में त्वचा संबंधी विकार (10.5 प्रतिशत), सामान्य विकार (10.2 प्रतिशत) और तंत्रिका तंत्र विकार (4.7 प्रतिशत) आम दुष्प्रभाव थे। किसी ठोस चिकित्सकीय निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए इन दुष्प्रभावों के ज्यादा गहरे अध्ययन की जरूरत है? क्या कोई ऐसी दवा है, जिसका कोई दुष्प्रभाव न होता हो? अध्ययन अपनी जगह है और लोगों के बीच सावधानी व जागरूकता का विस्तार बुनियादी जरूरत है। जहां तक वैक्सीन का सवाल है, तो आगे वैज्ञानिक अध्ययन होना चाहिए कि क्या वाकई सिर्फ वैक्सीन की वजह से एक तिहाई लोगों के शरीर में कोई न कोई दुष्प्रभाव हुआ है? लगातार शोध जरूरी है, ताकि दवाएं और टीके दुष्प्रभाव रहित हो जाएं।

हिन्दुस्तान Hindustan | 75 साल पहले 20 मई, 1949

इटली के उपनिवेश

इटली के भूतपूर्व उपनिवेशों के संबंध में संयुक्त राष्ट्र संघ की जनरल असेम्बली के सामने एक प्रस्ताव आया था। यह प्रस्ताव उस समझौते पर आधारित था, जो इंग्लैण्ड और इटली के विदेश मंत्रियों के बीच हुआ था। किंतु इस प्रस्ताव की एक धारा के पक्ष में दो तिहाई बहुमत प्राप्त नहीं हुआ, जिसमें लीबिया के एक हिस्से त्रिपोलीतानिया को आज से तीन वर्ष बाद सन् १९५२ में इटली के शासनादेश में सौंपने का निर्णय किया गया था। यद्यपि प्रस्ताव की अन्य धाराएं मंजूर कर ली गई। किंतु उपरोक्त धारा को आवश्यक समर्थन न मिलने के कारण यह सारा ही प्रस्ताव अमल में नहीं आ सकता।

इटली का औपनिवेशिक शासन संबंधित प्रदेशों के लिए कभी भी संतोषजनक नहीं रहा। अन्य साम्राज्यवादी देशों की भांति इटली ने भी अपने उपनिवेशों का जी भरकर शोषण किया और लोगों को उत्पीड़ित करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। मुसोलिनी के तानाशाही शासन में तो यह शोषण चरम सीमा को पहुंच गया था। उस सबकी याद इतनी ताजा है कि उसे भुलाया नहीं जा सकता। स्वभावतः त्रिपोलीतानिया के लोगों में पुनः इटली के शासन के अन्तर्गत जाने की कोई तीव्र उत्कण्ठा अथवा लालसा नहीं हो सकती। इसके विपरीत वे इटली के शासन को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। किंतु जिन लोगों के हाथों में इटालियन उपनिवेशों का भाग्य-निर्णय है, उन्हें वहां के लोगों की इच्छा-अनिच्छा की कोई परवाह नहीं है। वे राजनीति का खेल खेलने में व्यस्त हैं। उन्हें इटली को खुश करना है, जिससे वे शक्ति संतुलन में इटली का अपने पक्ष में उपयोग कर सकें। इसीलिए वे लीबिया के एक भाग त्रिपोलीतानिया और इटालियन सोमालीलेण्ड को इटली की संरक्षता में रखने को सहमत हो गये हैं। हालांकि इटली युद्ध में पराजित हो जाने के फलस्वरूप अपने भूतपूर्व उपनिवेशों पर से अधिकार गंवा बैठा है। ब्रिटेन और इटली के विदेश मंत्रियों में जो समझौता हुआ है, उसमें तय पाया गया है कि लीबिया को तीन हिस्सों में बांटकर तीन राष्ट्रों ब्रिटेन, फ्रांस और इटली के हवाले कर दिया जाये। साइरेनायका ब्रिटेन के, फेजान फ्रांस के और त्रिपोलीतानिया इटली के संरक्षण में रहे। त्रिपोलीतानिया के लिए यह व्यवस्था सोची गई है फिलहाल तीन वर्ष तक वह ब्रिटिश संरक्षण में रहे और ब्रिटेन एक अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार कौंसिल की मदद से उसका शासन चलाये।

सही और फर्जी के बीच मिटता फर्क

यहां स्कैन करें

हरजिंदर | वरिष्ठ पत्रकार

जिसे हम आज 'फेक न्यूज' कहते हैं, वह कोई नई अवधारणा नहीं है। गंदी राजनीति हमेशा से ही अफवाहों और फर्जी खबरों के जरिये चुनावों का खेल बिगाड़ती रही है।

यह बात 1967 की है, जब भारत अपनी चौथी लोकसभा को चुन रहा था। उस आम चुनाव में कांग्रेस ने लखनऊ से देश के सबसे बड़े शराब कारोबारी कर्नल वेद रतन मोहन को टिकट दिया था। वह देश की सबसे बड़ी शराब बनाने वाली कंपनी मोहन मीकिन के चेयरमैन थे। राजनीति और कारोबार की दुनिया के वह काफी सम्मानित शख्स थे। उन्हें उस दौर के सबसे मशहूर ब्रांड ओल्ड मॉन्क जैसी रम और गोल्डन ईगल जैसी बीयर शुरू करने का श्रेय भी दिया जाता है।

कर्नल वीआर मोहन की जीत तकरीबन पक्की मानी जा रही थी। वह लगातार दो बार लखनऊ शहर के मेयर रह चुके थे और शहर की सबसे चर्चित शख्सीयतों में शुमार थे। उद्योगपति होने के कारण यह भी माना जा रहा था कि उनके पास संसाधनों की कोई कमी नहीं है। लखनऊ की लोकसभा सीट कांग्रेस की परंपरागत सीट थी और उस चुनाव में बेशक पहली बार कांग्रेस पूरे देश में थोड़ी कमजोर दिख रही थी, लेकिन लखनऊ सीट पर उस हवा का असर नहीं था।

उस चुनाव की एक और महत्वपूर्ण बात यह थी कि लखनऊ लोकसभा सीट से 1957 और 1962 में लगातार दो चुनाव हारने वाले भारतीय जनसंघ के लोकप्रिय नेता अटल बिहारी वाजपेयी इस बार वहां से चुनाव नहीं लड़ रहे थे। अपने लच्छेदार भाषणों से भारी भीड़ बटोरने वाले वाजपेयी का लखनऊ से चुनाव न लड़ना भी कांग्रेस को आश्वस्त कर रहा था। कर्नल मोहन के सामने एकमात्र मजबूत उम्मीदवार थे आनंद नारायण मुल्ला। वकील और विद्वान होने के साथ ही वह उर्दू शायर भी थे। वह निर्दलीय उम्मीदवार के तौर पर चुनाव लड़ रहे थे और कांग्रेस की संगठनात्मक ताकत व कर्नल मोहन के निजी रुतबे के सामने कोई निर्दलीय उम्मीदवार टिक भी सकेगा, इसकी कोई उम्मीद नहीं थी। एक और चीज थी, जो आनंद नारायण मुल्ला के खिलाफ जाती थी।

दरअसल, लखनऊ से लगभग 25 किलोमीटर दूर काकोरी नाम के एक कस्बे के पास 9 अगस्त, 1925 को एक ट्रेन डकैती हुई थी। हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन के क्रांतिकारियों ने इसको अंजाम दिया था। ट्रेन में ले जाए जा रहे सरकारी खजाने को लूटने की योजना राम प्रसाद बिस्मिल व अशफाक उल्ला खां ने बनाई थी और इस योजना को अंजाम देने में चंद्रशेखर आजाद और राजेंद्र लाहिड़ी जैसे कई क्रांतिकारियों ने भाग लिया था। क्रांतिकारी गतिविधियों को अंजाम देने के लिए उनके संगठन को पैसे की जरूरत थी और इसीलिए ट्रेन डकैती जैसे दुस्साहसी काम को करने का फैसला किया गया था। बाद में जब इस मामले में मुकदमा चला, तो सरकार ने अपना वकील बनाया आनंद नारायण मुल्ला के पिताजी जगत नारायण मुल्ला को। इस केस में आनंद नारायण मुल्ला अपने पिता के असिस्टेंट थे और दोनों को सरकार की ओर से अच्छी-खासी फीस मिली थी।

डर यह था कि काकोरी कांड को लेकर आनंद नारायण मुल्ला को चुनाव प्रचार के दौरान कठघरे में खड़ा किया जाएगा। मगर ऐन वक्त पर हवा बदल गई। प्रचार यह हुआ कि इस बार कांग्रेस ने लखनऊ से एक शराबी को टिकट दे दिया है। फिर इस तरह की बातें भी उड़ाई गईं कि कर्नल वीआर मोहन जब प्रचार के लिए फलां मोहल्ले पहुंचे, तो नशे में एकदम धुत थे। कांग्रेस ने अपना सारा जोर लगा दिया, सारे संसाधन झोंक दिए गए, देश भर के तमाम बड़े नेताओं के दौरे हुए, उस समय के हिसाब से पैसा भी खूब बहाया गया, लेकिन अफवाहों से जो नैरेटिव तैयार हुआ, उसका जवाब नहीं मिल सका और आनंद नारायण मुल्ला बहुत आसानी से चुनाव जीत गए। यह पहला चुनाव था, जब लखनऊ लोकसभा सीट से कांग्रेस हारी और अगले चुनाव में कांग्रेस ने फिर से इस सीट को हासिल कर लिया।

लखनऊ का यह चुनाव इस बात का उदाहरण है कि जिसे हम आज 'फेक न्यूज' कहते हैं, वह कोई नई अवधारणा नहीं है। गंदी राजनीति हमेशा से ही अफवाहों और फर्जी खबरों के जरिये चुनावों का खेल बिगाड़ती रही है। विरोधियों का चरित्र हनन तब भी होता था, उन पर कीचड़ उछालने का चलन तब भी था। तब भी चुनाव लड़ने के लिए नैतिकता को दरकिनार कर दिया जाता था, लेकिन 21वीं सदी के दूसरे दशक में ये सारी स्थितियां पहले के मुकाबले बहुत आगे चली गईं।

अचानक ही हम एक ऐसे मोड़ पर पहुंच गए, जहां इस गंदी राजनीति की मुलाकात 'पोस्ट ट्रुथ एरा', यानी सत्योत्तर काल और मोबाइल तकनीक द्वारा उपलब्ध कराई गई चमत्कारिक रूप से तेज प्रसारण तकनीक से हुई। इस मुलाकात ने राजनीति के स्वरूप को ही एकदम से बदल दिया। पहले अफवाहों, फेक न्यूज और चरित्र हनन की जो राजनीति स्थानीय स्तर पर छिटपुट ढंग से होती थी, अब उसे बड़े पैमाने पर समन्वित और संगठित ढंग से किया जा सकता है। अभी तक जो महज एक राजनीतिक बीमारी थी, उसने एकाएक एक महामारी का रूप ले लिया था।

समाज भी जैसे इसके लिए तैयार था। हम ऐसे दौर में पहुंच चुके हैं, जहां तथ्यों से ज्यादा महत्वपूर्ण भावनाएं हो चुकी हैं। लोगों ने अपनी धारणाएं सच और यथार्थ के बजाय भावनात्मक अपील से बनानी शुरू कर दी हैं। उदारवादी लोकतांत्रिक राजनीति के मुहावरों से ऊबकर लोग विकल्प तलाशने लगे हैं। विभिन्न कारणों से लोकतंत्र की बहुत सी मूल संस्थाओं पर लोगों का भरोसा कम होने लगा है। इससे जो खालीपन बना है, उसने अनुदारवादी व पुनरोत्थानवादी ताकतों को पैर जमाने की जगह दे दी है। ये ताकतें बरसों से समाज में जिस ध्रुवीकरण के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगा रही थीं, अब उसकी जमीन तैयार हो चुकी है।

राजनीति में लगे नेताओं ने भी इस धारणा को बनाने में अपना पूरा योगदान दिया है। जब कोई खबर उनके अनुकूल नहीं होती, तो उसे वे बड़ी आसानी से फेक कह देते हैं। भले ही ये राजनीतिज्ञ अपना बचाव कर रहे होते हैं, लेकिन इसी के साथ वे मुख्यधारा के मीडिया की लगातार घट रही साख में अपना योगदान भी दे देते हैं। दिलचस्प बात यह है कि जिन्हें हम आज फेक न्यूज कहते हैं, उसका सबसे ज्यादा फायदा भी इन्हीं राजनीतिज्ञों ने उठाया है। पिछले कुछ समय में फेक न्यूज अलग-अलग तरह से और अलग-अलग स्वार्थ के हिसाब से इतना ज्यादा इस्तेमाल होने लगा है कि इसका अर्थ ही खत्म होता जा रहा है। न्यूज और फेक न्यूज का फर्क बताना भी अब मुश्किल हो जाता है।

(लेखक की हाल ही में प्रकाशित पुस्तक *चुनाव से छल-प्रपंच* का एक अंश)

ताकि सड़क हादसों में अब किसी की जान न जाए

यहां स्कैन करें

राघव चंद्रा | पूर्व सचिव, भारत सरकार

उत्तराखंड के सिलक्यारा में हिमालयी सुरंग में फंसे श्रमिकों को निकालने के लिए 17 दिनों तक चले बचाव अभियान ने पूरे देश का ध्यान खींचा था। विदेश से आए विशेषज्ञों, उच्च तकनीक वाले बोरिंग उपकरण और 41 एंबुलेंस की तैनाती इस बात का सुबूत थी कि भारत मानव जीवन को खासा अहमियत देता है। मगर यह आश्चर्य की बात है कि भारतीय सड़कों पर प्रतिदिन इससे दस गुना अधिक लोगों की मौत पर हम जरूरी तत्परता नहीं दिखा रहे।

बेशक, 1998 में राष्ट्रीय राजमार्ग विकास कार्यक्रम शुरू किए जाने के बाद से सड़क दुर्घटनाओं और मौतों को कम करने को लेकर प्रतिबद्धता दिखाई जाती रही है और कुछ मंत्रिगण इसकी समय-सीमा भी बताते रहे हैं, लेकिन जमीन पर यह समय-सीमा आगे ही बढ़ाई जाती रही। सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय की रिपोर्ट कहती है कि 2022 में सड़क हादसों में मरने वालों की संख्या 1,68,000 हो गई, जबकि 2021 में यह करीब 1,50,000 थी। जून, 2022 में जारी विश्व बैंक की प्रेस विज्ञप्ति के मुताबिक, सड़क हादसों और मौतों से भारत को अपनी जीडीपी का पांच फीसदी से अधिक का नुकसान होता है। ऐसे हादसों के शिकार 80 फीसदी से अधिक लोग उत्पादक आयु-वर्ग के होते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, विश्व की केवल एक फीसदी गाड़ियां होने के बावजूद सड़क हादसों में दम तोड़ने वालों में भारत की हिस्सेदारी 11 प्रतिशत है। यहां हर चार मिनट पर सड़क हादसे में जान जाती है।

सड़क हादसों की आशंकाएं गहराती जाएंगी। हादसों को कम करने के बजाय हमें मौत रोकने के उपायों पर अधिक जोर देना चाहिए।

एक आम गलतफहमी यह है कि खराब सड़कों के कारण दुर्घटनाएं होती हैं। मगर गुणवत्ता व लंबाई के मामले में एक्सप्रेस-वे और राजमार्गों का उल्लेखनीय विकास हमने भारत में देखा है। असल में, सड़कें जितनी अच्छी होती हैं, गाड़ियां उतनी तेजी से फर्राटे मारती हैं, जिसके कारण लापरवाही हो सकती है। नतीजतन, हमारे राजमार्गों पर प्रतिदिन करीब 500 लोग दम तोड़ते हैं। सरकार ने यातायात उल्लंघन करने वालों के लिए कठोर दंड और जेल की सजा जैसे उपाय किए हैं, लेकिन जैसे-जैसे गाड़ियों की संख्या बढ़ती जाएगी, सड़क हादसों की आशंकाएं भी गहराती जाएंगी। ऐसे में, हादसों को कम करने के बजाय हमें मौत को रोकने के उपायों पर अधिक जोर देना चाहिए। मसलन, अभी घायलों को एंबुलेंस से नजदीकी अस्पताल में ले जाते हैं। मगर रिपोर्ट बताती है कि मरने वाले लोगों में से आधे ने इसलिए दम तोड़ा, क्योंकि उनको जरूरी समय पर पर्याप्त मेडिकल सेवाएं नहीं मिल सकीं। ट्रॉमा केयर आपात सेवाएं अमूमन राष्ट्रीय राजमार्गों पर उपलब्ध नहीं होतीं और यही चूक कई घायलों की जान पर भारी पड़ जाती है।

अमेरिका के कुछ राज्यों में पुलिस चिकित्सा सुविधाओं के लिए हेलीकॉप्टर का उपयोग करती है, जिसमें जरूरी चिकित्सा उपकरण और दवा आदि होते हैं। पायलटों को बचाव विशेषज्ञ के रूप में प्रशिक्षित किया जाता है और सहायक चिकित्सकों को दुर्घटना की आशंका वाले क्षेत्रों के अनुसार रिजर्व रखा जाता है। साल 2012 में जॉन्स होपकिन्स अध्ययन का निष्कर्ष था कि चोट की गंभीरता, चोट के प्रकार और मरीज की उम्र को यदि दरकिनार कर दें, तो जमीनी मार्ग की तुलना में हवाई मार्ग से दुर्घटना-पीड़ितों को ले जाने से उनके बचने की संभावना अधिक होती है। गंभीर रूप से घायल पीड़ितों में रक्तस्राव रोकने में देरी मौत की मुख्य वजह है। इसे रोकने के लिए सहायक चिकित्सकों को दुर्घटनास्थल पर पहुंचाना आवश्यक होगा। इसी तरह, क्रिटिकल केयर सुपर-स्पेशियलिटी वाले ट्रॉमा सेंटरों की पहचान की जानी चाहिए और वहां हेलीकॉप्टर उतारने की उपयुक्त व्यवस्था होनी चाहिए।

मध्य प्रदेश सरकार ने ऐसी आपात सेवा शुरू की है। केंद्र सरकार को भी देश भर के लिए व्यवस्थित उपाय करने चाहिए। नवोन्मेषी बीमा उत्पादों के माध्यम से हम ऐसी सेवाओं की लागत वसूलने का रास्ता भी निकाल सकते हैं। जो लोग बीमा लेने में सक्षम नहीं हैं, उनके लिए आयुष्मान भारत या अन्य योजनाओं में इसके प्रावधान किए जा सकते हैं। सड़क दुर्घटनाओं की कीमत न केवल पीड़ित व उनके परिवार, बल्कि पूरी अर्थव्यवस्था चुकाती है। अभी इस वित्तीय वर्ष का बजट नहीं आया है। हमें इन मौतों को थामने के लिए बजट का कुछ हिस्सा इस मद में भी देना चाहिए। यह एक अनिवार्य मसला है।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

मनसा वाचा कर्मणा

भीतर का कटोरा खाली

हम सब एक गलती के शिकार हैं। हम सब सोचते हैं कि हमें सुखी या आनंदित होना हो, तो वह सुख कहीं बाहर से आएगा। कोई चीज या कोई घटना हमें सुखी करेगी। मानो सुख भी कोई वस्तु है, जिसे हम बाहर से खरीदकर ला सकते हैं, इसलिए हम दुनिया भर में ढूंढ़ते रहते हैं कि शायद धन में, पद या प्रतिष्ठा में या सफलता में हमें आनंद मिले। यह सब तो मिल जाता है और बाद में पता चलता है कि आनंद तो मिला ही नहीं। भीतर का कटोरा तो खाली का खाली है!

ओशो के पास इसका उपाय है। वह कहते हैं कि सुख या दुख भाव हैं, जो आपके भीतर बसते हैं। उन्हीं का प्रक्षेपण आप बाहर करते हैं। तीन तरह के भावों का ख्याल रखें। एक, जगत के प्रति मैत्री भाव। चाहे उसे अहिंसा भाव कहें, चाहे उसे प्रेम भाव कहें, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। लोग कुछ भी करें, आपके भीतर की मैत्री कायम रहे, तो आप कभी दुखी नहीं होंगे। दूसरों के व्यवहार पर आपका प्रेम निर्भर न हो। वह तो आपका अंतःस्थ झरना है, जो अखंड बह रहा है।

दूसरा, आप जो कुछ भी कर रहे हैं, उसके प्रति आनंद भाव। छोटे-छोटे कामों में आनंद लेना सीखें। परिणामों की अपेक्षा छोड़ दें, क्योंकि अपेक्षा ही दुख लाती है। आप साफ-सफाई कर रहे हैं या चाय बना रहे हैं, रास्ते पर चल रहे हैं, क्या यह आपको आनंदित नहीं कर सकता? आनंद तो हृदय में उमगता है, उसका बाहर से कोई संबंध नहीं है। काम करने से जो आनंद मिलता है, वही उसका फल है। इससे ज्यादा भला और क्या चाहिए?

और तीसरा, स्वयं के भीतर सुख-दुख की संवेदनाओं के प्रति सम भाव। यह थोड़ा महीन है और आपको मुश्किल भी मालूम होगा। आम तौर पर सुख और दुख की धूप-छांव हमें आंदोलित करती रहती है। इसलिए इससे बचने का बस एक ही उपाय है कि दोनों से दूर हट जाएं। अपना नजरिया बदल डालें। सुख-दुख के भाव आवारा बादल की तरह होते हैं, भटकते ही रहते हैं और आनंद है स्थिर आसमान। आनंद इन दोनों के पार है। आपके मन में अगर आनंद की पूंजी हो, तो आप इन भावों से बहुत प्रभावित नहीं होंगे।

आनंद तो हृदय में उमगता है, उसका बाहर से कोई संबंध नहीं है। काम करने से जो आनंद मिलता है, वही उसका फल है। इससे ज्यादा और क्या चाहिए?

इसे स्मरण रखें कि ध्यान की उपलब्धि का रास्ता बिल्कुल वैसा ही है, जैसे बगीचे में माली बीज बोता है, उसको सम्हालता है, खाद देता है, पानी देता है, सूरज की रोशनी की व्यवस्था करता है, सुरक्षा करता है और उन पर बागुड़ लगा देता है। फिर रोज-रोज यह प्रतीक्षा करता है कि वे अंकुरित हों और आगे की ओर बढ़ें। एक धैर्यपूर्ण लंबी प्रतीक्षा के बाद उनमें फूल आते हैं। जीवन जीना भी बगीचे में फूल खिलाने से भिन्न नहीं है।

अमृत साधना

एंटोनियो गुटेरस | संयुक्त राष्ट्र महासचिव

न हमास के 7 अक्तूबर के हमले को जायज कहा जा सकता है और न फलस्तीनियों को मिल रही सामूहिक सजा को उचित ठहराया जा सकता है। यह समय तत्काल युद्धविराम, सभी बंधकों की बिना शर्त रिहाई और पूरे गाजा में अबाधित मानवीय मदद पहुंचाने का है।

आज वैकल्पिक राजनीति की अधिक जरूरत

पिछले दशक के शुरुआती वर्षों में जब अन्ना हजारे और स्वामी रामदेव का आंदोलन शुरू हुआ था, तब यह धारणा बनी थी कि देश को वैकल्पिक राजनीति की दरकार है। ऐसा इसलिए, क्योंकि जमी-जमाई पार्टियां लोकतांत्रिक राजनीति की कुछ गड़बड़ियों की शिकार हो गई थीं। इन गड़बड़ियों में भ्रष्टाचार सबसे बड़ा मुद्दा था और माना जा रहा था कि सरकार की जन-हितकारी योजनाएं इसीलिए जरूरतमंदों तक नहीं पहुंच पा रहीं, क्योंकि बिचौलिए उसे बीच रास्ते डकार जाते हैं। हालांकि, कभी राजीव गांधी ने भी कहा था कि सरकार का एक रुपया लाभार्थी तक रिसते-रिसते 15 पैसों में सिमट जाता है। आज की स्थिति भी इन सबसे अलग नहीं है।

आज चाहे बात सत्ता पक्ष की हो या विपक्ष की, कोई पार्टी ऐसी नहीं दिखती, जो भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, दागी राजनेताओं जैसे आरोपों से अछूती हो। सत्तारूढ़ दल जरूर सबसे अलग दिख रहा था, लेकिन उस पर भी चुनावी बॉन्ड का दाग लग गया है, हालांकि यह अभी दावे के साथ नहीं कहा जा सकता कि यह दाग कितना गहरा है। फिर भी, मन में संदेह जरूर पैदा हो गया है। कुछ इसी तरह की बात उस दल के बारे में भी कही जा सकती है, जिसने कभी वैकल्पिक राजनीति का झंडा उठाया था। वह पार्टी भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन से ही खड़ी हुई है, लेकिन उस पर कथित शराब घोटाले का ऐसा आरोप लगा कि उसके कई मंत्रियों के साथ-साथ खुद मुख्यमंत्री को जेल की हवा खानी पड़ी। फिलहाल, मामला अदालत में है, जहां सच और झूठ का फैसला हो जाएगा, लेकिन आम जनमानस में इस पार्टी की छवि जरूर धूमिल हुई है।

इस सूरतेहाल में वैकल्पिक राजनीति की तलाश के लिए हमें किसी अंधेरे में लालटेन लेकर जाने की जरूरत नहीं है। सदाचारी राजनीति की जो तलाश देश भर में हो रही है, वह हमारे आस-पास ही है। बस हमें उसे खोजना और आगे बढ़ाना है। वास्तव में, कई दल और संगठन जमीनी स्तर पर आज भी शिद्दत से काम कर रहे हैं और वैकल्पिक राजनीति के लिए जरूरी ऊर्जा देश भर में फैला रहे हैं। ऐसे संगठनों की मजबूती के लिए जरूरी है कि जिन मुद्दों पर वे आंदोलन कर रहे हैं, उनसे जुड़ा जाए और उनको जोश-जुनून के साथ आगे बढ़ाया जाए। मीडिया की जिम्मेदारी भी यहां नहीं भूलनी होगी। उसे ऐसे कार्यकर्ताओं और नेताओं को ज्यादा तवज्जो देनी चाहिए, जो जमीनी स्तर पर कुछ अलग करने का प्रयास कर रहे हैं। ऐसा करने से ही देश में बहुप्रतीक्षित नई राजनीतिक बयार बह सकती है।

प्रेम कुमार, टिप्पणीकार

अनुलोम-विलोम

वैकल्पिक राजनीति

जमी-जमाई पार्टियां ही देश चलाने में सक्षम

राष्ट्रीय फलक पर उभरने के लिए बेचैन कुछ राजनीतिक पार्टियां अजीब-अजीब किस्म के नारे गढ़ती हैं। उसे वे इस तरह प्रचारित करती हैं, जैसे वह कोई नवीन सिद्धांत या उत्प्रेरक महान विचार हो। मानो उससे राष्ट्र की दशा-दिशा सब एक क्षण में बदल जाएगी और चारों तरफ क्रांति दिखने लगेगी। जबकि, असलियत में उसमें कोई दम नहीं होता। वैकल्पिक राजनीति भी इसी तरह का एक नारा है। आखिर यह वैकल्पिक राजनीति है क्या? किसका विकल्प बनने के लिए ये दल उतावले हैं? दावा किया जाता है कि देश की आम जनता कांग्रेस, भाजपा जैसी पुरानी पार्टियों से ऊब गई है और मजबूरी में ही इन दलों को अपना वोट दे रही है। अब वह इनसे अलग कोई विचारधारा तलाश रही है, इसलिए वे उनका विकल्प बनकर आए हैं। अब यह भी कोई बात हुई? न विचार का पता, न पूर्व में किए गए कार्य या योगदान की चर्चा। मात्र विकल्प शब्द खोजकर रख दिया गया और प्रारंभ हो गया, विकल्प का प्रचार।

वैसे, भारतीय राजनीति में तीसरे दल के रूप में कई समूह अवसर का लाभ उठाकर उभरे हैं, जिनको जनता ने राज करने का मौका भी दिया। इनमें प्रमुख हैं, जनता पार्टी, जनता दल। मगर इनके पद-लोलुप नेताओं की महत्वाकांक्षाओं ने अच्छी सरकारों की असमय बलि ले ली। जनता की दृष्टि में इनका हश्र तो ऐसा हुआ कि वह विकल्प बनने वाले विचार को ही झांसा मानकर निराश हो गई। काले धन और भ्रष्टाचार के खिलाफ किए गए आंदोलन से उपजी एक पार्टी ने तो ऐसे-ऐसे कारनामे कर दिखाए कि उसके नेताओं अलावा सब शर्मसार हैं। क्या उसके चारित्रिक पतन को, राजनीति में सब चलता है, कहकर खारिज किया जा सकता है? बड़े लोग तो अनुकरणीय होते हैं, उनका चरित्र जनता के लिए मानदंड स्थापित करता है। उनके व्यक्तिगत जीवन को भला कैसे छोड़ा जा सकता है?

अमेरिका और ब्रिटेन जैसे देशों में द्विदलीय राजनीतिक व्यवस्था उत्कर्ष पर है। वहां की राजनीतिक स्थिति आज भी काफी कुछ अनुकरणीय है, इसलिए द्विदलीय राजनीति के विरोध में दी गई दलीलें सतही और हास्यास्पद लगती हैं। जब दलों के प्रमुख नेता गरिमाहीन, अयोग्य और भ्रष्ट हो जाते हैं, तब दल और उसकी विचारधारा भी मूल्य खो देती है। मगर इसका यह अर्थ नहीं कि राजनीति में विकल्प की जरूरत है। लोकतंत्र में मामूली संसाधनों के साथ भी विपक्ष ने उच्च आदर्श पेश किए हैं। इसलिए यही कहना सही होगा- *ये मिट्टी सोंधी जरूर है, मगर थकाती बहुत है/ आसमान से न देख तू जमीन, जम्हूरियत के परिंदे।*

दिनेश सिंह, चिकित्सक

विचार
नवभारत टाइम्स
नवभारत टाइम्स । नई दिल्ली। सोमवार, 20 मई 2024

फिजूल की अटकलें

पांचवें चरण के तहत सोमवार को आठ राज्यों और केंद्रशासित क्षेत्रों की 49 लोकसभा सीटों पर वोट डाले जा रहे हैं। इसके बाद दो ही चरण की वोटिंग रह जाएगी। स्वाभाविक ही अब बहस इन सभी चरणों के वोटिंग पैटर्न और 4 जून को इसके संभावित नतीजों की ओर मुड़ती दिख रही है।

वोटिंग और मार्केट | इन बहसों में सबसे ज्यादा चर्चा पहले तीन चरणों में वोटिंग परसेंटेज में आई कमी और शेयर बाजारों में आई गिरावट की हुई। हालांकि, चौथे चरण में वोटिंग बढ़ने के बाद मार्केट अपने रेकॉर्ड लेवल के करीब पहुंच गया। खैर, विश्लेषकों का एक तबका कह रहा है कि मार्केट में गिरावट इस वजह से आई क्योंकि उसे लगा कि नतीजे अप्रत्याशित होने वाले हैं।

पांचवें चरण की वोटिंग आज

अतीत के अनुभव | दिक्कत यह है कि इस तरह के विश्लेषण और उनके निष्कर्ष अतीत में कई बार गलत साबित हो चुके हैं। 2014 में नरेंद्र मोदी की अगुआई में BJP को ऐसी जीत मिली, जिससे देश में तीन दशक बाद किसी पार्टी ने अपने बहुमत वाली सरकार बनाई। 2019 में पार्टी ने उससे भी बड़ी जीत हासिल की। लेकिन 2019 में भी चुनाव नतीजों से पहले शेयर बाजार लड़खड़ाते नजर आ रहे थे। 2014 में भी कई विश्लेषक यूपी की कई सीटों पर मुस्लिम मतदाताओं के कथित ध्रुवीकरण का हवाला देते हुए खास तरह के चुनाव नतीजों की भविष्यवाणी कर रहे थे, जो गलत साबित हुए।

निष्कर्ष की जल्दबाजी | इस बार भी यह ट्रेंड दिखा। कम मतदान को सत्तापक्ष के समर्थक मतदाताओं के उत्साह में कमी का संकेत बताया जा रहा है तो महाराष्ट्र और बिहार जैसे राज्यों में NDA के सहयोगी दलों की वोट ट्रांसफर करने की क्षमता पर सवाल उठाए जा रहे हैं। जहां तक वोटरों के उत्साह में कमी की बात है तो अव्वल तो चुनाव आयोग के अंतिम आंकड़ों के मुताबिक वोट परसेंटेज का अंतर काफी कम रह गया है, दूसरी बात यह कि वोट न देने वालों में किस पक्ष के समर्थक ज्यादा हैं, इसे लेकर परस्परविरोधी दावे किए जा रहे हैं जिनकी सचाई 4 जून को ही सामने आएगी।

राजनीतिक घात-प्रतिघात | जहां तक महाराष्ट्र और बिहार जैसे राज्यों की बात है तो इसमें दो राय नहीं कि वहां राजनीतिक घात-प्रतिघात की वजह से चुनावी परिदृश्य बड़ा जटिल हो गया है। लेकिन इन राज्यों सहित देश के बाकी हिस्सों की भी बात करें तो इस पर लगभग आम राय है कि इन चुनावों में कोई लहर नहीं है। ऐसे में किस नेता का चेहरा ज्यादा प्रभावी होगा या किस पार्टी का मुद्दा अधिक कारगर साबित होगा ये तय करना वाकई मुश्किल है। इस स्थिति में किसी तरह की अटकलबाजी करने से बेहतर है कि 4 जून का इंतजार किया जाए।

चक्र-व्यू

मुस्कुराती खटिया

राहुल पाण्डेय

खटिया खंचही (ढीली बुनाई वाली) हो तो तकिया लगाने की जरूरत नहीं पड़ती। दोनों हाथों से मोबाइल पकड़कर आराम से रील देखी जा सकती है। जाने कितनी अमराइयों में इन दिनों खंचही खटिया पर एकदम टाइट रील चल रही होगी। कौवों की बन आई है। तोते इंसानों को देखकर मुस्कुरा रहे हैं। इंसान भी मुस्कुरा रहा है। दूर से देखेंगे तो खंचही खटिया भी आपको मुस्कुराती हुई ही दिखेगी। खंचही खटिया की बनावट ही कुछ ऐसी होती है। समय के साथ ढीली होते-होते मुस्कुराहट उसके समूचे अस्तित्व पर छा जाती है। बेड पर तो जो चाहे लेट ले, मुस्कुराती हुई खटिया पर विरले ही लेट पाते हैं। अब यह और बात है कि दामाद अगर पुराना है तो उसे खंचही खटिया ही नसीब होती है। एक बार मैंने अपने एक रिश्ते के फूफा को खंचही खटिया से बाहर निकाला है। बेचारे बड़ी देर से आवाज दे रहे थे। मैं सुनकर भी अनसुनी कर रहा था। जब बुआ ने लोटा फेंका, हल्ला मचाया, तो मैंने कहा- चलो ठीक है। मेरा यही मानना रहा है कि खंचही खटिया पर बैठना या लेटना एक कला है। फूफा बंबई से आए थे, तो हम यही मानते थे कि कलाकार होंगे! भले बंबई की मिलों की मंदी ने उनको बेकार किया था, मगर यह कैसे मान लें कि इतने बेकार होंगे कि खटिया से खुद ना निकल पाएं! और फिर जिस रास्ते जाना है, वापस भी उसी रास्ते आना है, यह मानी हुई बात है।

खटिया कसी हो तो कभी-कभार इज्जत पर भी बन आती है। अगर खटिया पर मान्य लोग बैठे हैं, या फिर पसरे हैं तो उस खटिया पर जाकर सीधे बैठ जाना कुसंस्कार माना जाता है। लेकिन अब तो संस्कारों की चलाचली की बेला है। अब पता चलता है कि दामाद जी दलान में बैठे हैं। खटिया के सामने दाना-पानी रखा है। ऐसे में कोई आकर एक मुट्ठी चबैना उठा लेता है और दामाद जी के बगल धप्प से आकर ऐसे बैठ जाता है, जैसे खेत की गुड़ाई कर के आया हो। तख्त पर धप्प से बैठिए तो किसी को कुछ नहीं होगा। मगर खटिया पर धप्प से बैठना पहले से बैठे लोगों को उछाल देना होता है। इधर कोई धप्प से बैठा, उधर दामाद जी के हाथ में मौजूद चाय का कप छलका। खंचही खटिया इज्जत बचाने के भी काम में आती है। पहली बात यह कि उस पर कोई धप्प से बैठ ही नहीं सकता। दूसरी बात यह कि खंचही खटिया पर अगर कोई पहले से ही पसरा हुआ है तो आमतौर पर लोग पैताने ही बैठते हैं। पैताने, यानी पैर की तरफ। ऐसे में मान्य जी का मान भी बचा रहता है, उनकी चाय भी और छोटे-बड़े की इज्जत भी। खटिया अगर खंचही हो तो हमारे संस्कार भी उसमें सुरक्षित रहते हैं। संस्कारों को स्वयं उठने की कला जो नहीं आती!

एकदा

नागफनी की जूती

1782 की बात है। तब दिल्ली में लड़ाई-झगड़े का जमाना था, मगर उर्दू के उम्दा शायर मीर तकी मीर के दिल में दिल्ली बसी थी। दिन मुफलिसी में कट रहे थे। दिल्ली में जब फाकों से तंग आ गए तो लखनऊ जाने की ठानी। लखनऊ चले तो गाड़ी का पूरा किराया भी पास ना था। अनचाहे मन से एक शख्स के साथ शरीक हुए। आगे चल कर उस शख्स ने कुछ बात की तो मीर उसकी तरफ से मुंह फेर कर बैठ गए। कुछ देर बाद फिर उसने बात की। मीर नाराज होकर बोले, 'साहब, आपने हमारा किराया अदा किया है। बेशक गाड़ी में बैठिए, लेकिन बातों का क्या मतलब?' उसने कहा, 'बात रास्ते का शगल है, दिल बहलता है।' मीर बोले, 'आपका शगल है, हमारी तो जुबान बिगड़ती है।'

लखनऊ पहुंचे तो पता चला कि आज मुशायरा है। रह ना सके, फटाफट एक गजल कही और मुशायरे में जा पहुंचे। उनका लिबास बेहद पुराने ढंग का था- मारवाड़ी पगड़ी, पचास गज की घेर का कुर्ता, कपड़े का एक पूरा थान कमर से बंधा। नागफनी की नोकदार जूती, जिसकी डेढ़ बालिश्त ऊंची नोक। कमर में एक तरफ सीधी तलवार, दूसरी तरफ कटार, हाथ में लाठी। महफिल में पहुंचे तो लोग उनका मजाक उड़ाने लगे। उदास होकर मीर एक कोने में बैठ गए। जब शमा उनके सामने आई तो लोगों ने हंस-हंस कर पूछा, 'हुजूर, वतन कहां है?' मीर ने तुरंत ये अशआर कहे और सुना दिए- 'दिल्ली जो एक शहर था आलम में इंतिखाब/ रहते थे मुंतखब ही जहां रोजगार के/ उसको फलक ने लूट के वीरान कर दिया/ हम रहने वाले हैं उसी उजड़े दयार के।' सबको उनकी हकीकत मालूम हुई, तब सबने उनसे माफी मांगी।

संकलन : **जमील गुलरेज**

चीन और पाकिस्तान के बीच पिसता पाक अधिकृत कश्मीर लगाएगा भारत से उम्मीद

PoK में चीन की रुचि का क्या है राज़

चंद्रभूषण

पाकिस्तान-अधिकृत कश्मीर के जिस हिस्से को पाकिस्तानी हुकूमत ने 'आजाद जम्मू-कश्मीर' का नाम दे रखा है, वहां हाल में दिखा बड़ा विरोध प्रदर्शन वहां की केंद्र सरकार द्वारा हड़बड़ी में घोषित की गई 23 अरब पाकिस्तानी रुपयों (भारतीय मुद्रा में लगभग 700 करोड़ रुपये) की सहायता के बाद शांत हो गया है। आंदोलन की दस मांगें थीं, जिनमें आटे और बिजली की महंगाई कम करने की मांग सबसे ऊपर थी। कहा जा रहा है कि मृतकों को मुआवजे समेत आंदोलन की सारी मांगें सरकार ने मान ली हैं।

हड़बड़ी की वजह | पिछले कुछ सालों में ऐसा देखा गया है कि पाकिस्तान सरकार प्रदर्शनकारियों के मरने-जीने को ज्यादा गंभीरता से नहीं लेती। इस बार राजधानी इस्लामाबाद से इतनी दूर उपद्रव भड़कने के दो दिन के अंदर ही उसने घुटने टेक दिए तो इसकी दो वजहें हैं। एक तो यह कि प्रदर्शनकारियों में से कुछेक ने भारत के झंडे लहराए और बयान दिया कि पाकिस्तान में उनका दम घुट रहा है। दूसरा पहलू IMF के एक दल के पाकिस्तान आने से जुड़ा था। उसका बयान आया कि ऐसी उथल-पुथल की हालत में कर्जे की नई किस्त जारी करने में मुश्किल आ सकती है।

एक-दूसरे के खिलाफ | पाकिस्तान के कब्जे में चले गए जम्मू-कश्मीर रियासत के इलाके 21वीं सदी में पूरी तरह चूं-चूं का मुरब्बा बन चुके हैं। संयुक्त राष्ट्र की जनरल असेंबली में और अन्य अंतरराष्ट्रीय मंचों पर पाकिस्तान जम्मू-कश्मीर के लिए हर संभव मौके पर छाती पीटता नजर आता है, लेकिन एक छोटी सी सचाई को उसके प्रतिनिधि कहीं चर्चा में नहीं आने देते कि उसके कब्जे में मौजूद जम्मू-कश्मीर के दोनों हिस्से एक-दूसरे के खिलाफ हैं। किसी भी मुद्दे पर वे एक साथ नहीं खड़े होते।

मोहरा है पाक अधिकृत कश्मीर
- इस इलाके से गुजरता है चीनी कॉरिडोर
- रणनीतिक तौर पर अहम है CPEC
- हिंद महासागर में निकासी की है योजना

चीन की दिलचस्पी | 15 से 65 किलोमीटर चौड़ी और 400 किलोमीटर लंबी वह पट्टी, जो पाकिस्तान में 'आजाद जम्मू-कश्मीर' कहलाती है, खुद को पूरी जम्मू-कश्मीर रियासत की भावनाओं की प्रतिनिधि बताती थी। लेकिन गिलगिट-बाल्टिस्तान के लोगों ने एक दिन के लिए भी खुद को इस पट्टी से नहीं जोड़ा। पाकिस्तान सरकार भी उन पर राज करने का वही तरीका अपनाती रही जो उसने खैबर-पख्तूनख्वा प्रांत के कबाइली इलाकों के लिए अपना रखा है। कोई मानवाधिकार नहीं, कोई चुनाव नहीं, कहीं कोई बवाल हुआ तो पूरी बस्ती पर सामूहिक जुर्माना। यह स्थिति तब बदलनी शुरू हुई जब चीन ने इस इलाके में दिलचस्पी दिखाई। जाहिर है, इससे यहां के लोगों की सौदेबाजी भी बढ़ी।

AI Image

शक्सगाम घाटी का हस्तांतरण | यह घटनाक्रम भारत-चीन युद्ध के तुरंत बाद 1963 में शुरू हुआ, जब पाकिस्तान ने काराकोरम और कुनलुन पर्वत श्रृंखलाओं के बीच पड़ने वाली शक्सगाम घाटी चीन को सौंप दी और चीन ने इसे अपने बागी प्रांत शिनच्यांग का हिस्सा बना लिया। ध्यान रहे, यह घाटी जम्मू-कश्मीर का अभिन्न हिस्सा रही है। इसे किसी तीसरे देश को सौंपने का कोई अधिकार पाकिस्तान के पास नहीं था।

रणनीतिक अहमियत | अपनी इस पहल से पाकिस्तान ने चीन को दक्षिण एशिया में पैर जमाने का मौका दे दिया। शक्सगाम घाटी अभी चीन के लिए रणनीतिक रूप से बहुत ज्यादा महत्वपूर्ण हो गई है। यहां से गुजर रही सड़क, काराकोरम हाईवे के जरिये वह न केवल अपने दो समस्याग्रस्त राज्यों तिब्बत और शिनच्यांग को जोड़ता है, बल्कि हिंद महासागर में अपनी निकासी के सारे इंतजाम भी कर रहा है।

CPEC का उपयोग | जम्मू-कश्मीर रियासत के इन दोनों इलाकों को मिलने वाला अमेरिकी संरक्षण 2005 में भारत-अमेरिका परमाणु समझौते के बाद से नाम मात्र का रह गया, और 2019 में एक बड़ा बदलाव यहां यह हुआ कि शक्सगाम घाटी होकर गुजरने वाले चीन-पाकिस्तान इकॉनमिक कॉरिडोर (CPEC) से चीनी माल ग्वादर बंदरगाह पहुंचने लगा। CPEC चीन के लिए बड़े रणनीतिक महत्व की चीज है। ईरान से तेल-गैस की पाइपलाइन इसी रास्ते अपने यहां ले जाने की उसकी योजना है।

पीछे हटना मुश्किल | यह बहुत आसान तो नहीं होने जा रहा है, इसका अंदाजा चीन को सिंध में कई बार और कश्मीर की नीलम घाटी में भी एक बार अपने इंजीनियरों पर हुए भीषण हमलों से हो चुका है। लेकिन जितना धन और सोच-विचार चीनी हुकूमत CPEC पर लगा चुकी है, उसे देखते हुए पीछे हटने का कोई रास्ता उसके पास नहीं है।

साझा हितों के सूत्र | मतलब यह कि पाकिस्तानी कब्जे वाले जम्मू-कश्मीर में भारत की दिलचस्पी की वजह आने वाले समय में पाकिस्तान से ज्यादा चीन बनेगा। पूर्वी लद्दाख में चीन के उग्र रवैये की एक बड़ी वजह शायद यह है कि यहां अपनी फौजी तैयारी के बल पर वह भारत के बरक्स पाकिस्तान को कमजोर नहीं पड़ने देना चाहता ताकि पाक-अधिकृत जम्मू-कश्मीर के रास्ते हिंद महासागर में निकासी की उसकी दीर्घकालिक योजना परवान चढ़ती रहे। जैसे लक्षण हैं, आटे और बिजली की महंगाई अभी भले ही यहां के लोगों लिए बहुत बड़ा मुद्दा हो, लेकिन आने वाले दिनों में इससे बड़े सवाल भी उनके बीच से उठेंगे। भारत सरकार को पाक-अधिकृत कश्मीर के लोगों से संवाद जोड़ना चाहिए, क्योंकि दोनों पक्षों के बीच साझा हितों के सूत्र जल्द ही सामने आ सकते हैं।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं)

देश में सब बराबर, बताती है वोटिंग की लाइन

पहाड़ों के कठिन मौसम के कारण हिमाचल प्रदेश के किन्नौर को बाकी देश से पांच महीने पहले ही मौका मिल गया था। और उसमें भी कालपा गांव के श्याम शरण नेगी सबसे आगे रहे। तब उनकी उम्र थी 34 साल। 6 दशक बाद, 2014 में जब देश एक बार फिर आम चुनाव से गुजर रहा था, तब 97 बरस के हो चुके नेगी ने अपने पहले मतदान का अनुभव बताया था, 'मुझे आज भी वह खुशी, गर्व का अहसास याद है जो मैंने उस दिन महसूस किया था। चाहे बारिश हो या बर्फबारी, मैं इससे पीछे कभी नहीं हटा।' भारत के पहले वोटर थे श्याम शरण नेगी। उन्होंने कभी कोई चुनाव मिस नहीं किया। अनुभव की रेखाओं से भर चुके चेहरे पर चौड़ी मुस्कान लिए उन्होंने पिछले लोकसभा चुनाव में भी वोट डाला था। अगर इस चुनाव में वह होते, तो एक बार फिर उसी चिर-परिचित मुस्कान के साथ अंगुली पर लगी स्याही को गर्व से दिखाते।

कहा जाता है, लोकतंत्र इस विश्वास पर टिका है कि आम लोगों में ही खास ताकत होती है। मतदान जरिया है उस खास ताकत को महसूस करने का, अपने अधिकारों के इस्तेमाल का। वोटर लिस्ट में नाम देखना, पोलिंग बूथ पर जाना, कतार में लगना और फिर अपनी पसंद के उम्मीदवार को वोट देना - यह पूरी प्रक्रिया उत्सव जैसी है। अब उत्सव है तो उत्साह और आनंद होना ही चाहिए।

वोटिंग एक जिम्मेदारी है, लेकिन उन जिम्मेदारियों जैसी नहीं जो बोझ बन जाती हैं। यह आपसे कुछ एक्स्ट्रा डिमांड नहीं करती। कुछ ऐसा नहीं मांगती, जिसे पूरा करने में दम भर आए, बल्कि इसका हर स्टेप तो बहुत ही मजेदार है।

जीवन आनंद

वोट का महत्व तभी है जब उसे दिया जाए। अगर इसे अपने ही पास रखा, तब कोई मोल नहीं। और देना किसे है, इससे भी इसकी कीमत बढ़ जाती है। इसे यूं ही किसी पर लुटाया नहीं जा सकता।

वोटिंग की लाइन अहसास कराती है कि कैसे इस देश में सभी बराबर हैं। अहसास होता है एक-दूसरे से जुड़ाव का। लाइन में आगे-पीछे खड़े लोगों से हो सकता है कि पहले से कोई परिचय न हो, लेकिन वहां सभी को बांधने वाली एक वजह होती है। वह वजह है सकारात्मक बदलाव का हिस्सेदार बनने की चाहत।

वोट देने के लिए EVM का बटन दबाते ही आने वाली बीप की आवाज गहरा संतोष देती है। इस वक्त के अनुभव की तुलना उस समय से कर सकते हैं, जब कोई बड़ा काम पूरा हुआ हो। तब गर्व होता है खुद पर, कि हम भी लोकतंत्र में भागीदार बन रहे हैं। जो नतीजा आएगा, उसमें हमारा भी एक मत होगा। यह एक वोट देश की आवाज में आपकी आवाज को मिला देता है।

वोट वह टूल है, जिससे कुछ भी बदला जा सकता है। इसका सबसे बड़ा आनंद यह है कि इससे हमें निर्णय लेने की शक्ति मिलती है। हम एक फैसला लेते हैं। अपने विचारों और विश्वास के आधार पर किसी को चुनते हैं और उसे अपना समर्थन देते हैं।

जॉर्ज बर्नार्ड शॉ का कहना था कि जब आप मतदान नहीं करते तो शिकायत करने का अधिकार खो देते हैं। लोकतंत्र का दिल होता है वोट, जिसकी धड़कन जुड़ी है आपसे। और हर धड़कन आकार देती है हमारे भविष्य को। इस चुनाव में वोटिंग एक्सपीरियंस को और भी शानदार बनाने के लिए कई अनूठे प्रयोग किए जा रहे हैं। कहीं लकी ड्रॉ निकाला जा रहा है, तो कहीं पोहा और जलेबी से स्वागत। इतनी कवायद इसलिए कि हर एक मतदाता पोलिंग बूथ तक पहुंचे और हर एक मत चुनाव से जुड़े। हमारे पास मौका है जिम्मेदारी निभाते हुए आनंद उठाने का।

शेयर करें अपने अनुभव
जीवन की दिनचर्या के अनुभवों में आप कैसे आनंद महसूस करते हैं, हमें बताएं **nbtreader@timesgroup.com** पर, और सब्जेक्ट में लिखें- **'जीवन आनंद'**

पौधों में कैसे दिखता है इंटेलिजेंस

मृत्युंजय राय

19वीं सदी के मध्य में जन्म लेने वाले भारतीय साइंटिस्ट जगदीश चंद्र बोस ने दुनिया को बताया कि पेड़-पौधे भी दर्द महसूस कर सकते हैं। वे भी इंसानों और दूसरे जीवों की तरह प्रकाश, कोलाहल और सर्दी-गर्मी का अहसास कर सकते हैं। बोस ने प्रयोगों के जरिये यह बात साबित की थी। पौधों में इंटेलिजेंस के इसी विषय पर Zoe Schlanger की नई किताब आई है, जिसका नाम है **'Light Eaters.'** Zoe साइंस जर्नलिस्ट रही हैं। अपने पेशे की वजह से ही उनकी दिलचस्पी बाद में Botany में हुई, जहां उनकी नजर पौधों में इंटेलिजेंस को लेकर रिसर्चर्स के बीच चल रही बहस पर पड़ी।

जैसे, मक्के की मिसाल लें तो यह कैटरपिलर (caterpillar यानी इल्ली) की पहचान उसके लार से कर सकता है। इसके बाद मक्के का पौधा हवा में केमिकल कंपाउंड रिलीज करता है ताकि इल्ली का शिकारी जीव उस तक आ पहुंचे। पौधा ऐसा इसलिए करता है ताकि इल्ली मक्के के दानों को नुकसान न पहुंचाए। Zoe लिखती हैं, 'रिसर्चर्स के बीच इस बात को लेकर बहस है कि क्या पौधे किसी नीयत से कुछ करते हैं? और क्या इंटेलिजेंस (बुद्धिमता) के लिए नीयत का होना जरूरी है?' इसके जवाब में Zoe का कहना है कि इंटेलिजेंस का पता लगाने के लिए नीयत का होना जरूरी नहीं है। उनके मुताबिक, बड़ी बात यह है कि पौधे असल में क्या करते हैं। वह लिखती हैं कि इसे देखने पर पता चलता है कि वे रियल टाइम में फैसले ले रहे होते हैं और उसका मकसद भविष्य की प्लानिंग होता है।

Zoe अपनी किताब के जरिये पाठकों को पौधों के इंटेलिजेंस की उस दुनिया में ले जाती हैं, जिसके बारे में गिने-चुने लोग ही जानते हैं। Zoe अपनी किताब में Yellow monkey flowers का जिक्र करती हैं। वह बताती हैं कि ये फूल pollination के लिए कैसे मधुमक्खियों को गुमराह करते हैं। असल में मधुमक्खियां फूलों से निकलने वाले केमिकल्स के जरिये पता लगाती हैं कि उनमें कितना परागकण है। ज्यादातर मामलों में वे केमिकल्स की मदद से इसका सही अनुमान भी लगा लेती हैं। लेकिन monkey flowers ऐसे केमिकल्स रिलीज करते हैं, जिससे मधुमक्खियों को लगता है कि इन फूलों में परागकण हैं। हालांकि, सचाई यह होती है कि बगैर परागकण के ही ये फूल वैसे केमिकल्स रिलीज करते हैं। वहीं, इस भ्रम में मधुमक्खियों के फूल पर आने की वजह से उनका pollination हो जाता है, जिससे Yellow monkey flowers का विस्तार का लक्ष्य पूरा हो जाता है। Zoe का कहना है कि पौधे सर्वाइवल के लिए ऐसा करते हैं। अगर ये फूल केमिकल रिलीज करते हैं तो उसका मकसद उसकी एवज में मधुमक्खियों से कुछ करवाना होता है। वह यह सवाल भी उठाती हैं कि क्या यहां मधुमक्खी अपनी इच्छा से इन फूलों का pollination कर रही होती है या ये फूल उन्हें गुमराह करके अपना काम निकालते हैं। जाहिर है, इसका फैसला करना आसान नहीं है। दोनों ही बातें सही हो सकती हैं। बल्कि, एक सवाल यह भी उठता है कि कहीं ऐसा तो नहीं कि दोनों आपस में सहयोग कर रहे हों? इस के जवाब में वह लिखती हैं कि कुदरत में किसी को झांसा देने या उनके बीच आपसी सहयोग में फर्क करना मुश्किल होता है। लेकिन इस बात में कोई शक नहीं है कि पौधे इरादतन इस तरह के काम करते हैं। वह बताती हैं कि जब साइंटिस्ट पौधों में इंटेलिजेंस की बात करते हैं तो उसका मतलब वातावरण के हर पहलू को समझते हुए उस हिसाब से खुद में बदलाव लाना होता है।

AI Image

विचार विंडो

अब और अनदेखी नहीं

प्रणव प्रियदर्शी

कोविड-19 महामारी भले बीत गई हो, इससे उपजी स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियां आज भी एक मसला बनी हुई हैं। खासकर, पिछले कुछ समय में हेल्दी दिखते यंग लोगों की अचानक होने वाली मौत की घटनाओं ने इंडस्ट्री को भी सचेत किया है। कंपनियां अपने एंप्लॉयीज की सेहत को लेकर ज्यादा सतर्क हुई हैं। वर्कप्लेस में हेल्थ कॉन्शसनेस को बढ़ावा देने वाला महौल बनाने के लिए ठोस उपाय किए जा रहे हैं। खास बात यह कि हाल के वर्षों में वर्कफोर्स में महिलाओं की संख्या और प्रभाव में जो इजाफा हुआ है, उसका असर इन कदमों में भी देखा जा सकता है। कुछ दशक पहले की बात होती तो एम्प्लॉयीज की सेहत का मसला मूलतः पुरुषों की सेहत के पहलू तक सीमित रहता। मगर इस बार जो कदम उठाए जा रहे हैं वे न केवल जेंडर न्यूट्रल हैं बल्कि इनमें खास तौर पर महिलाओं को ध्यान में रखकर उठाए गए कदम भी शामिल हैं। मसलन, डोएच बैंक, सिप्ला, अडोबी, अपग्रैड, बीटओ, ड्रीम स्पोर्ट्स और निंजाकार्ट जैसी कंपनियों में न केवल खाने और पानी की क्वॉलिटी की समय-समय पर जांच की व्यवस्था की जा रही है बल्कि वर्कफ्लेस पर आंखों को चुभने वाली सफेद लाइट के बदले LED लाइट्स के इंतजाम किए जा रहे हैं। कर्मचारियों के लिए ब्रेकआउट स्ट्रेचिंग सेशन और एर्गोनॉमिक थेरपी सेशन आयोजित किए जा रहे हैं तो यह भी व्यवस्था की जा रही है कि वे जरूरत के मुताबिक कुछ पढ़ सकें, अच्छा म्यूजिक सुन सकें और योग कर सकें। सिप्ला जैसी कुछ कंपनियां तो अपने ऑफिसों को गार्डेन का रूप दे रही हैं ताकि एम्प्लॉयीज ब्रेक के दौरान खुद को प्रकृति के करीब महसूस कर सकें। महिला केंद्रित उपायों की बात करें तो कुछ कंपनियों ने खास तौर पर इनडोर वॉकिंग ट्रैक बनवाए हैं और कई कंपनियों में जुम्बा क्लासेज आयोजित करवाए जा रहे हैं। इन सबका मकसद वर्कफोर्स को स्वस्थ माहौल प्रदान करते हुए हेल्दी लाइफस्टाइल अपनाने को प्रेरित करना है ताकि कंपनियों की प्रॉडक्टिविटी प्रभावित न हो।

AI Image

आधी दुनिया

रीडर्स मेल

www.edit.nbt.in

■ चुप रहना एक कला

13 मई को 'जीवन आनंद' कॉलम में 'चुप करके सुनेंगे, तभी तो ठीक से बहस करेंगे' शीर्षक से प्रकाशित लेख पढ़ा। कुछ लोगों की बेवजह बोलने की आदत होती है। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो मुद्दे की बातें कहते हैं। लेकिन किसी भी सूरत में ज्यादा बोलने से बेहतर है कम और सोच-समझकर बोलना। इसमें सीखने की गुंजाइश ज्यादा रहती है। राजनीति की बात करें तो राजनेता अपने विरोधियों को नीचा दिखाने के लिए अभद्र भाषा का इस्तेमाल करते हैं। दूसरे पक्ष वाले इसका उसी शैली में प्रतिकार करते हैं। जो गलत बोलते हैं, उनकी ही छवि खराब होती है।

राजेश कुमार चौहान, ईमेल से

■ सुनने के फायदे

यह पत्र 13 मई के लेख 'चुप करके सुनेंगे, तभी तो ठीक से बहस करेंगे' से संबंधित है। चुप रहकर सुनना एक महत्वपूर्ण कौशल है जो बातचीत में गहरे और सार्थक जवाब देने की क्षमता बढ़ाता है। जब गौर से सुनते हैं, तो आप बातचीत के सभी पहलुओं को समझते हैं। इससे आप अधिक सटीक और प्रासंगिक जवाब दे सकते हैं। कोई बिंदु स्पष्ट नहीं होता, तो विनम्रता से सवाल पूछें। इससे आपकी समझ बढ़ेगी और बेहतर जवाब देने में मदद मिलेगी।

अनुराग सिंह, ईमेल से

■ सेहत से खुशहाली

कहते हैं, स्वस्थ तन में स्वच्छ मन निवास करता है। इसलिए शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य से जीवन में खुशियां आती हैं। इसके लिए नियमित व्यायाम, संतुलित आहार और पर्याप्त नींद महत्वपूर्ण हैं। इससे तनाव, चिंता और अवसाद कम होता है। तन स्वस्थ रहने से खुशी मिलना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, क्योंकि शारीरिक स्वास्थ्य सीधे मानसिक और भावनात्मक स्थिति को प्रभावित करता है। स्वस्थ रहने से बीमारी और उसके इलाज पर होने वाले खर्चों से बचा जा सकता है, जिससे परिवार में खुशहाली आती है।

सीमा रावत, ईमेल से

जीवन आनंद

nbtedit@timesgroup.com पर अपनी राय नाम-पते के साथ मेल करें।

अंतिम पत्र

गर्मी में बढ़ी डिमांड ने AC कंपनियों के निकाले पसीने - एक खबर

पसीने सबको आते हैं, वजहें चाहे अलग हों!

सुमित कुमार

THE SPEAKING TREE

और पढ़ने के लिए देखें

hindi.speakingtree.in

चीज़ों के असल स्वरूप की समझ देता है ज्ञान

श्री प्रेम रावत जी

एक दिन खगोल विज्ञान की एक पत्रिका में ब्रह्मांड की तस्वीरें देख रहा था। वे तस्वीरें अविश्वसनीय थीं। जिज्ञासा बढ़ी और अपने खगोलशास्त्री मित्र की सहायता से रात के शांत वातावरण में दूरबीन से आसमान की ओर देखना शुरू किया। आश्चर्यजनक दृश्य। देखते-देखते अचानक अहसास हुआ कि सतगुरु ने हमें भी तो एक दूरबीन दी है- ज्ञान। दूरबीन की तरह ज्ञान के जरिए हम अपने अंदर स्थित इस आंतरिक ब्रह्मांड को देख सकते हैं। निश्चित ही ज्ञान रूपी दूरबीन से हम हृदय की प्यास को बुझा सकते हैं। अपने अंदर मौजूद चीजों को देख सकते हैं, जिनमें बहुत आकर्षण है। तो क्यों न हम सभी ज्ञान की उस दूरबीन को पकड़ें और उन अनदेखी चीजों को देखते-देखते उसमें खो जाएं!

एक बार जब आप उस सुंदरता से जुड़ जाते हैं और हृदय आनंद से भर जाता है, तो यह आकस्मिक नहीं होगा। यह संयोग से नहीं होगा। यह पृथ्वी के प्रत्येक मनुष्य के लिए पूर्ण और सर्वोच्च वास्तविकता है। जब आपको वह अहसास होता है, तब और कुछ नहीं, समय रुक जाता है। समय अब मायने नहीं रखता। उस समय आप संतुष्टि महसूस करते हैं और उस समय आप शांति में हैं। और तभी आपकी मौलिक वास्तविकता पूरी होगी। कई बार ऐसा लगता है कि जीवन में हम कुछ चाहते हैं उसकी हमें जरूरत नहीं है। एक ही नाम को आप शांति, खुशी, मुक्ति कह सकते हैं। आप इसे आनंद भी कह सकते हैं, कोई बात नहीं। क्यों? क्योंकि वे एक ही चीज के अलग-अलग नाम हैं। जब हृदय संतुष्ट होगा, तो आनंद होगा। जब हृदय संतुष्ट होगा तो शांति होगी।

अंधेरे और उजाले में क्या अंतर है? अंधेरे में आप देख नहीं सकते। यदि आप नहीं देखेंगे तो आप बाधाओं से बच नहीं पाएंगे। आप जिन बाधाओं से टकराते हैं, रास्ते में आने वाली सभी बाधाएं, सूर्य के उगने के साथ गायब नहीं होती हैं। लेकिन आप उन्हें देख सकते हैं और उनसे बच भी सकते हैं। प्रकाश बाधाओं को दूर नहीं करता, बल्कि उन्हें प्रकाशित करता है। मान लीजिए, मैं आपको एक छाता पेश करता हूं। मैं बारिश को नहीं रोक सकता। पर आपके पास छाता है तो कोई समस्या नहीं है। आप भीगने से बच जाएंगे। मान लीजिए, मैंने आपके हाथ में एक दीपक थमा दिया ताकि आप देख सकें और उन चीजों से बच सकें, जिनसे बचना चाहते हैं। इस तरह ज्ञान काम करता है। इसलिए आपको इसकी आवश्यकता है।

जब मैं अपने अंदर जाता हूं तो मुझे अनंत महसूस होता है। यह सिर्फ एक अनुभूति है। यह कोई परिभाषा नहीं है बल्कि एक एहसास है जिसका सिर्फ अनुभव ही होता है। जिसे सुनकर मैं कह सकूं कि हां, यह अनंत है। क्योंकि मुझे इसका अंत नजर नहीं आता। हर दिन मैं इसमें गोता लगाता हूं। हर दिन मैं इसकी और गहराई में उतरता हूं। फिर भी ऐसा लगता है कि यह कभी खत्म नहीं होगा।

जब मैंने उसमें प्रवेश किया और मैं उसकी संगति में हूं, तो वही सच्ची संगति है जो मेरा हृदय चाहता है। वही वह संगति है जो मुझे आनंद से भर देती है।

प्रस्तुति : आर.डी. अग्रवाल 'प्रेमी'

आर.एन.आई. नं. 510/57© सर्वाधिकार सुरक्षित। लिखित अनुमति के बिना संपूर्ण या आंशिक पुनर्प्रकाशन पूर्णतः प्रतिबंधित। स्वत्वाधिकारी बैनेट, कोलमैन एण्ड कम्पनी लिमिटेड के लिए राजीव यादव द्वारा, 7 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 से प्रकाशित तथा **टाइम्स ऑफ इंडिया प्रेस, साइट IV, औद्योगिक क्षेत्र साहिबाबाद** और प्लॉट नंबर 7-8, सेक्टर M-11, ट्रांसपोर्ट हब, इंडस्ट्रियल मॉडल टाउनशिप, मानेसर, हरियाणा से मुद्रित। फोन : 23302000 फैक्सः 23492047, पंजीकृत कार्यालय : दादाभाई नौरोजी रोड, मुंबई-400001। विमान सेवा शुल्क : 1 रु. प्रति कॉपी। नेपाल में कुल मूल्य : सोमवार से शनिवार : नेपाली 5 रु. ; रविवार : नेपाली 6 रु.
संपादक (दिल्ली मार्केट) : आशीष पांडे (इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अन्तर्गत उत्तरदायी)